बोधायनवृत्तिकार जगद्गुरु श्रीपुरुषोत्तमाचार्याय नमः
आनन्द-भाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्याय नमः

श्रीरामानन्द चिन्तन परिषद् का प्रकाशन
(श्रीराम चरण ग्रन्थमाला पञ्चम पुष्प)

उपनिषद भाष्यकार
पंडितराज स्वामी श्रीहरिदासाचार्य जी कृत

नित्यकृत्य बोधक प्रबन्धः

(रहस्य प्रकाशिका व्याख्या सहित)

टीकाकार—श्रीसियारामदासजी शास्त्री 'नैयायिक'

संपादक :-
भ श्रीरा
मानस महारथी गिरि जदास, 'रामानन्द आश्रम'
मानस राजहंस हनुमानदास जी मायणी
श्रीमणिरामदास छावनी, श्रीअयोध्याजी

प्रकाशक :- त्यागी श्रीनारायणदासजी मानसरत्न
सुदामा कुटी बंशी ट, वृन्दाबन

प्रकाशक :

त्यागी श्री नारायणदास जी 'मानसरत्न'

श्री सुदामा कुटी वंशीवट, वृन्दावन

मथुरा (उ०प्र०)

पुस्तक प्राप्ति स्थान :

१—श्री सुदामा कुटी, वंशीवट, वृन्दाबन

२—श्रीमणिरामदास छावनी, अयोध्या

३—श्रीरामानन्द आश्रम, अयोध्या, फैजाबाद (उ०प्र०)

४—श्री सुरेन्द्रनाथ तिवारी, श्री श्रीराम तिवारी

भठवांरूप, गोपालगंज, विहार

मूल्य : पुनः प्रकाशनार्थ ५/- रुपये मात्र

प्रथम संस्करण १०००]
वि० सं० २०४२]

१९८५ [श्री सुखानन्दजी जयन्ती
वै[illegible]ख शुक्ल नवमी

मुद्रक :

मोहनी प्रिंटर्स

श्री कनकभवन, श्रीअयोध्याजी।

श्रीमते रामानन्दाय नमः

सम्पादकीय

उत्पत्तिस्थितिलयादिकारण सर्व तंत्र स्वतन्त्र सर्व नियन्ता प्रभु श्रीसीताराम जी ही सर्वोपमायोग्यौ सकल गुण निधान श्री वैष्णव कुल युगावतार श्री मत्परमहंस प्रस्थानत्री भाष्यकार ब्रह्मनिष्ठ सारस्वत सार्बभौम आचार्य सम्राट जगद्गुरु स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज चरणाश्रित भारतीय संस्कृति साधना के प्रतीक बेदमार्ग प्रतिष्ठापनाचार्य सद्धर्म संरक्षण बिचक्षण विद्वत्तवरेण्य भक्ति सिद्धान्त प्रतिपादक श्रीमदग्रदेवाचार्यजी महाराज द्वारे के अद्वितीय रत्न, श्रीमैथिली वरदहस्त प्राप्त विदुतिलक प्रवर्तक श्रीजानकी कृपा भाष्यकार स्वामी श्री रामप्रसादाचार्य जी महाराज सिद्ध सन्त हो गये हैं। विन्दु तिलकधारी परम्परा के महान् सन्त श्रीरामतापिनी उपनिषद्, श्रीरामस्तवराज, दशनामापराध भाष्य तथा आर्षतत्व, श्रीरामकृष्णैकत्व, नित्य कृत्य वोधक प्रबन्धः आदि सैकड़ों ग्रन्थों के प्रणेता स्वामी श्री हरिदासाचार्य जी महाराज हो गये हैं। महाराज श्री की कुछ कृतियां आज भी उपलब्ध हैं जिन विद्वानों को देखने की इच्छा हो तो अयोध्यास्थ मणिपर्वत वरबिश्राम बाग श्रीरामग्रन्थागार डा० पं० श्री रामकुमारदासजी महाराज के यहाँ देख लें।

स्वामी श्री हरिदासाचार्य जी महाराज के अमूल्य निधि छिपे हुए साहित्य को जो अभी तक [illegible] हुए हो नहीं हैं उनकी सुरक्षा हेतु उनके साहित्य को खोज-२ करके श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के उदीयमान नव दिनेश, श्री वैष्णव सिद्धान्त के प्रचार प्रसार में मन-कर्म-बचन तन-मन-धन समर्पित [illegible] ने वाले ब्याकरण, न्याय, बेदान्त, साहित्य,

पुराण, दर्शन, धर्म, बेदादि के महान् विद्वान्, अद्भुत व्यास, लगभग पचासों ग्रन्थों के लेखक, प्रकाशक, टीकाकार, सम्पादक कई संस्थानों के अध्यक्ष जगद्गुरु पत्रिका के सम्पादक पश्चिमनाम्नाय जगद्गुरु स्वामी श्रीरामानन्दाचार्य पीठाधीश्वर स्वामी श्री रामेश्वरानन्दाचार्य जी महाराज कोशलेन्द्रमठ सरखेज रोड पालड़ी अहमदाबाद-७ ने प्रकाशित करने के लिए ज० गु० पत्रिका में सूचना दिए हैं। अत: मैं समस्त श्री रामानन्दीय श्रीवैष्णवों मठाधीशों, महान्तों, विद्वानों, सन्तों नागाअतीतो नाके घाटे खालसाधारी महामण्डलेश्वरों, छात्रों से निवेदन करता हूँ, कि ऐसे श्री सम्प्रदाय के महान् सेवाओं के ब्रत लेने वाले श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ स्वामी जी का साथ दें जिससे समाज की अभी बहुत सी समस्यायें जो अभी नहीं सुलझी हैं वह सुगमता से सुलझायी जा सके।

अगस्त ८४ में जब मैं अहमदाबाद गया तो प्रेम दरवाजा में रुका। वहाँ के महान्त जी तथा स्वामी श्री शिवरामदास जी महाराज बड़े सुयोग्य महान्त हैं, भूखे, अभ्यागत, छात्रादि की सेवा बड़े प्रेम से हर तरह से करते हैं मेरे स्वरूपानुरूप मेरी भी व्यवस्था हुई। तत्पश्चात् मेरे प्रिय मित्र बहुत दिन के बिछुड़े हुए स्वामी श्री भरतदासजी का दर्शन वहीं पर हुआ, श्री भरतदास जी के माध्यम से अहमदाबाद के कुछ सन्त महान्तों का दर्शन कर सका, जब भारत रत्न विद्या भास्कर उपनिषद् भाष्यकार पं० सम्राट स्वामी श्री बैष्णवाचार्य जी महाराज का दर्शन करने गया तो देखा ६० वर्ष की आयु में भी सम्प्रदायिक सिद्धान्त लिख रहे हैं। स्वामी जी से श्री सम्प्रदाय पूर्ण रूपेण परिचित है आपकी सेवाओं के लिए श्री सम्प्रदाय ऋणी है। श्री सम्प्रदाय के सिद्धान्तों की रक्षा के लिए लगभग ३०० ग्रन्थों को लिखे, जिनमें कुछ भाष्य है कुछ स्वतन्त्र। महाराज श्री ने भी स्वामी [illegible]साचार्य जी के ग्रन्थों के विषय में कहे थे कि प्रकाशित करना चाहिए।

महाराज श्री ने, नित्य कृत्य बोधक प्रबन्धः में बिन्दु तिलक सिद्धांत का प्रतिपादन अकाट्य तर्कों के द्वारा किए हैं। जब मैं भारत प्रख्यात बिद्वान् पचासों ग्रन्थ रत्नों के लगभग तीन सौ निबन्धों के प्रणेता श्री सम्प्रदाय बिभूति मानस तत्वानुबेषी बेदान्त भूषण डा० पं० श्रीरामकुमार दास जी महाराज से मानस पढ़ते समय नित्य कृत्य बोधक प्रबन्धः भी पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ। महाराज श्री, श्री सम्प्रदाय के सिद्धांतों के अद्भुत मर्मज्ञ हैं श्रीमुख से इसकी व्याख्या सुनने को मिली पर अल्पज्ञतावश समझ कम पाया। (तब अति रहेउ अचेत)। महाराज श्री ने प्रेरणा दिए कि इसकी हिन्दी टीका करके प्रकाशित कराना चाहिए। समयाभाव होने के कारण टीका मैं नहीं लिख सका, मन में तो इच्छा थी ही कि बिन्दु तिलक धारियों की कुछ सेवा इस पुस्तिका के माध्यम से की जाय। भगवान की लीला बड़ी बिलक्षण है। माता मैथिलीजी को सेवा लेनी थी संयोगवश पं० श्री सियारामदास जी शास्त्री (नैयायिक) से बात चीत टीका के बिषय में हुई, उन्होंने सहर्ष स्वीकार करके रहस्य प्रकाशिका व्याख्या सहित लिखकर दे दिए। लेकिन शास्त्री जी काशी में हैं पुस्तिका श्रीअयोध्या में छपी है इसलिए प्रूफ वे नहीं देख सके हैं त्रुटि रह जाना स्वाभाविक है। वह त्रुटि इनकी न होकर सम्पादक की ही समझनी चाहिए।

तत्पश्चात् इस पुस्तिका के प्रकाशन हेतु गो संत सेवी महान् संत श्री श्री १०८ श्री स्वामी सुदामादास जी महाराज (सुदामा कुटी बंशी वट, बृन्दाबन मथुरा) के परम प्रिय शिष्य त्यागी श्री नारायणदासजी मानस रत्न ने इस दास को सौंपे [illegible] में हरि इच्छा समझकर जगद्-गुरु स्वामी श्री रामानन्दाचार्य जी महाराज, श्री विद्वगाद्याचार्य जी श्रीमद्वाल्मीकि रामायण भवन के निर्माता स्वामी श्री मणिरामदास जी छावनी पीठाचार्य स[illegible]भूषण, गो संत प्रतिपालक श्री श्री १०८ श्री

स्वामी महान्त नृत्यगोपालदास जी महाराज, श्री मदग्रदेवाचार्य जी द्वारे के अद्वितीय रत्न महामण्डलेश्वर श्री श्री १०८ श्री स्वामी महान्त रामस्वरूपदास जी महाराज (निमिया बाबा) जानकी निवास, गो संत प्रतिपालक सन्त शिरोमणि श्री श्री १०८ श्री महान्त कौशलकिशोर दास जी महाराज, श्री श्री १०८ श्री स्वामी महान्त रामतीरथ दासजी महाराज, बड़े भक्तमाल, रामायणी श्री जगदेवदासजी महाराज, मानस मधुकर (संस्थापक विष्णुभवन रामकोट, आदि की आज्ञा से इस कार्य में प्रवृत्त हुआ। साथ ही साथ मित्रों को स्मरण कर लेना उचित ही होगा जो सम्पादन काल में अनेक तरह से सहयोग देकर मेरे उत्साह को बढ़ाये हैं स्वामी श्री रामकिंकरदास जी व्याकरणाचार्य, आचार्य श्री जयरामदासजी (श्री वैष्णव) श्री कृपालु रामदासजी, डा० श्री रामप्रियादासजी, श्री राघवदासजी (खड़ेश्वरी) रामायणी श्री बृज-मोहनदासजी, रामायणी श्री जगमोहनदासजी, रामायणी श्री सियाराम दासजी, रामायणी श्री जनमेजयशरण जी, स्वामी श्री नारायणदास जी शास्त्री (अहमदाबाद), रामायणी श्यामदासजी, रामायणी राममंगल दासजी आदि का।

क्षमा याचना :

सम्पादन कार्य में प्रमादवश त्रुटियां हुई हों तो पाठकगण उसे क्षमा करते हुए सुधारकर पढ़ें। और इस तुच्छ सम्प्रदाय सेवक को आशीर्वाद दें, कि इसी प्रकार से सम्प्रदाय की सेवा में भक्ति सुदृढ़ हो। साथ ही साथ मोहनी प्रिंटर्स के प्रोपाइटर श्री रामशंकर सिंह जी को धन्यवाद देता हूँ जो ठीक समय से पुस्तिका निकालने में संलग्न थे।

श्री सम्प्रदायानुचर
सम्पादक

रामायणी गिरिराजदास   त्यागी नारायणदास जी

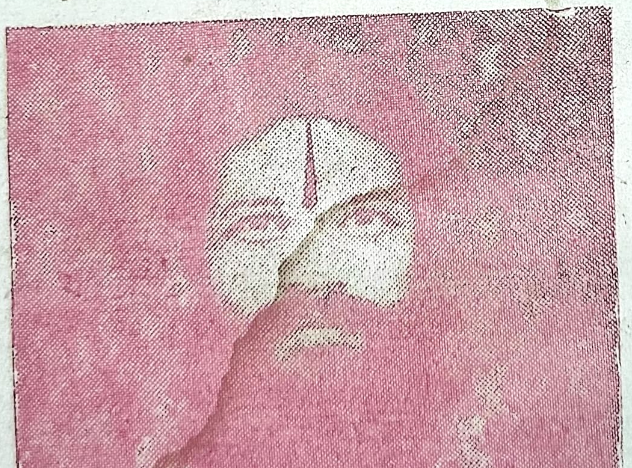

रामायणी हनुमानदास जी 'मानस राजहंस'

श्रीमतेरामानन्दायनमः

भारत प्रख्यात भारतीय संस्कृति साधना के प्रतीक, वेदमार्ग प्रतिष्ठापनाचार्य, विद्वत्वरेण्य श्री रामानन्द-सम्प्रदाय के तात्विक विद्वान, महान् विभूति, ५० ग्रन्थ रत्नों के तथा लगभग ३००) निबन्धों के प्रणेता, वेदान्त भूषण डा० प० श्री रामकुमारदासजी महाराज मानस तत्वानुवेषी, बरविश्राम बाग श्रीरामग्रन्थागार मणिपर्वत अयोध्या-फैजाबाद उ० प्र० की मंगल कामना।

—सम्पादक

मंगल कामना

ॐ नमो भगवते श्रीमते रामानन्दाचार्य्याय

भाष्यकार स्वामी

अनन्त श्रीहरिदासाचार्यजी महाराज

आसीद्यो द्विजराज मौलि मुकुटो योगीन्द्र चूड़ामणिः।
साक्षाच्छङ्कर तुल्ययोगविभुवैः प्रख्यात प्रज्ञा परः॥
कोर्त्या चन्द्रकला सहस्त्रकिरणैस्तुल्य प्रतापो रबिः।
श्री हरिदासाचार्य वर्य सततं श्रीराम चरणे रतः॥१॥
निर्वैरः सर्व दम्भलोभ विवर्जितः।
नित्यं रामरसानन्दी हरिदासाः स मे गतिः॥२॥
नमः विद्वद्वरिष्ठाय हरिदासाय धीमते।
कौशलकुमार भक्ताय भाष्यकारायवै नमः॥३॥
अप्रतिरथ [illegible] विद्वन् महामहिमा गुण राशी।
मथि श्रुति शास्त्र पुराण रामसिय तत्व प्रकाशी॥

रामानन्दाचार्य तत्व बिस्तारन हेतू ।
रचे अनेक सुग्रन्थ सुदृढ़ भव निधि कर सेतू ॥
नाम मात्र हरिदास 'हौं रामदास' निज मुख कह्यो ।
श्री हरिदासाचार्यवर रामभक्ति दृढ़ करि गह्यो ॥

विन्दुवाचार्य जगद्गुरू स्वामी श्री रामप्रसादाचार्य जी के प्रशिष्य स्वनाम धन्य स्वामी श्री मणिराम दासजी महाराज (छोटी छावनी) के छोटे गुरुभाई विद्वत्व बरिष्ठ जगद्गुरू स्वामी श्री हरिदासाचार्य जी महाराज अपने समय के भारतीय शास्त्रों के उदघट विद्वान थे । उन्होंने सैकड़ों ग्रन्थों का प्रतिपादन किया । कुछ स्वतन्त्र ग्रन्थ, कुछ भाष्य ग्रन्थ हैं, उन भाष्य ग्रन्थों में कुछ भाष्य प्रकाशित हैं । श्री रामतापिनी उपनिषद, श्रीरामस्तवराज भाष्य, रहस्यत्रय भाष्यादि । आपके सभी ग्रन्थ संस्कृति में ही हैं, आप न्याय के अप्रतिम विद्वान थे इसलिये आपके संस्कृति ग्रन्थों की भाषा अत्यन्त क्लिष्ट है यद्यपि आपके कुछ पद्य राष्ट्र भाषा हिन्दी में लिखे हुये मिलते हैं । आपने अपने सभी ग्रन्थों में श्री सीताराम जी का परत्व एवं उपासना रहस्य का विस्तृत विवेचन किया है । उनमें प्राप्य ग्रन्थों में, नित्य कृत्य बोधक प्रबन्ध, अत्यन्त ह्रस्वकाय ग्रन्थ हैं उसकी टीका सहित मेरे प्रिय, छात्र, शिष्य पं० गिरिराज दास मानस महारथी तथा उनके साथी मानस राजहंस हनुमानदास सम्पादन कर रहें हैं । मैं हृदय से आशीर्वाद देता हूँ कि इसी तरह से वे सम्प्रदायिक ग्रन्थों का प्रकाशन, सम्पादन करते हुये श्री सम्प्रदाय की सेवा करते रहें । क्योंकि साहित्य सेवा सभी सेवाओं से उत्कृष्ट है ।

श्री सम्प्रदायानुचरः
...० रामकुमार दासः
म..णपर्वत श्री अयोध्या जी

शुभ कामना

हरि की कृपा देव पर रहती मिलता हँसता फूल ।
नुक्ता नुक्ता सजा स्नेह से रहा हर्ष से भूल ।।
मान मिला भावों का सुन्दर लेकर प्रीति प्रमान ।
नन्दित हुआ लोक जीवन है पाकर तुम्हें महान ।।
दास हास उल्लास जोड़ते चलो लोक के बीच ।
सदा देश की फुलवारी को श्रम जल से तुम सींच ।।
गिरते दुखी जनों को जीवन देते हो भरपूर ।
रिक्त भाव का कोष न होगा, होगा रिपु दल चूर ।।
राम नृत्य बोधक प्रबन्ध के लेखक श्री हरिदास ।
जय 'हनुमान' और 'गिरिस्वामी' सम्पादक द्वय खास ।।
दाल गलेगी नहीं किसी की कभी सामने देव ।
सहृदय सुजन सराहा करते सदा आपकी टेव ।।
सिया राम मय गये बताकर जग को तुलसी दास ।
याद नहीं किसको यह पहुँची गन्ध न किसके पास ।।
राम भूमि वासी तुम सचमुच सुधी सन्त सिर मौर ।
महिमा मयी कृपा का वाचक कहदूँ किसको और ।।
दाग न लगे कभी जीवन में ऐसा है आचार ।
सतत साधनानिष्ठ मनीषी रखते मृदु व्यवहार ।।

शुभैषी :-

वेद प्रकाश द्विवेदी "प्रकाश"

मनोरमा प्रकाश निकेतन, साहित्य सदन
सेठवा, मालीपुर, फैजाबाद (उ०प्र०)

स्वामी हरिदास जी

स्वार्थ वृत्ति से हो विदूर तुम साधक सन्त महान ।
मीत बने हैं इस भूतल के लेकर गौरव गान ।।
हरते दीन दुखी के दु:ख को भरते नूतन प्रान ।
रिपु न किसी को माना, जीवन का देते बरदान ।।
दास बना जग देख तपस्या का नूतन उन्मेष ।
सहज सरल प्रतिभा के अद्भुत उद्भावक सविशेष ।।
जीवन धारा में जन मन को दिया उपनिषद् ज्ञान ।
केशव के कृतित्व को बाणी का सौंपा अभिमान ।।
पञ्चभूत की रामतापिनी का देकर सन्देश ।
दोल नृत्य कल कृत्य बोध का सौंपा पावन देश ।।
मेह कृपा का वरष न किस पर करता आया त्रान ।
प्रथित सुधी बक्ता उदारता के प्रतीक गुरुमान ।
काव्य देवता के कुसुमों से करता मैं सम्मान ।
शत शत बन्दनवारों से प्रभु देते जन जन मान ।।

श्रीमती मनोरमा देवी
मनोरमा प्रकाश निकेतन, साहित्य सदन
सेठवा, मालीपुर, फैजाबाद (उ०प्र०)

श्रीमते रामानन्दाय नमः

अयोध्यास्थ जगद्गुरु स्वामी श्रीरामानन्दाचार्य पीठ (आचार्य पीठ) संस्थापक हिन्दू धर्मोद्धारक, श्री सम्प्रदायनिष्ठ, सनातन धर्म रक्षक, अनन्त श्रीविभूषित श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य स्वामी श्री रामचरण दास जी महाराज का शुभाशीर्वाद ।

—सम्पादक

आशीर्वाद

मुझे जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि श्री अयोध्या वासी परमधाम प्राप्त परम विद्वान् विन्दु श्री रामानन्दीय विरक्त बैष्णव पं० प्रवर स्वामी श्री हरिदासाचार्यजी महाराज रचित (नृत्य कृत्य बोधक प्रबन्धः) हिन्दी टीका सहित मेरे शिष्य गिरिराजदास रामायणी तथा उनके साथी हनुमानदास जी मानस राजहंस द्वारा सम्पादित हो रही है इसके लिए उन्हें आशीर्वाद हैं कि भगवान श्री सीताराम जी कृपा करें कि इन लोगों की निष्ठा श्री सम्प्रदाय की सेवा में संलग्न रहें।

शुभ चिन्तक

परमहंस रामचरण दासः

आचार्य पीठ-अयोध्या

* समर्पण *

बड़े गुरु भ्राता :

अष्टभुजी दुर्गा पीठाधीश्वर, महामण्डलेश्वर स्वामी श्री श्री १०८ श्री रामकेशव दास जी महाराज के कर कमलों में—

बड़े गुरु भाई :

जिस संसार ने आपके दर्शन किये हैं, वे मुझे आप का गुरुभाई समझ कर बड़ा ही स्नेह करते हैं। भूतकाल के इतिहास में लोगों ने सन्तों के नाम ही पढ़े हैं। परन्तु मैंने अपने बीते काल के इतिहास में महान् सन्तों के पवित्र चरणों पर अपना मस्तक चढ़ाया है। जब मैं आप की सेवा में रहता था, आपकी साधुता देखते ही बनती थी, आप एक अच्छे विचारक आदर्शमय संत हैं। मैं उन दिनों को कभी नहीं भूलता हूँ जिस भयानक परिस्थिति में मेरे प्राणों के निग्रह क्रम में आप मेरे नव जीवन का संभाल करते थे। आपके उन आर्ष बचनों पर मुझे बहुत ही विश्वास है जिनमें सन्तो के कृपा का महत्व बताया गया है मैं निरन्तर इसका अनुभव किया करता हूँ। और इसके लिए पश्चाताप् भी करता हूँ कि मैंने आप के लिए कुछ भी नहीं किया।

गुरुभाई जी आप की प्रसन्नता के लिए आप के पूर्व विद्वान् पं० प्रवर स्वामी श्री हरिदासाचार्य जी महाराज रचित (नित्य कृत्य बोधक प्रबन्ध हिन्दी टीका सहित आपकी कृपा से सम्पादन कार्य पूर्ण हो गया है यह नित्य कृत्य बोधक प्रबन्धः, सुगन्धमय पारिजात के रूप में आपको समर्पित है। आशा है कि आप इसे सहर्ष स्वीकार करेंगे।

आपका

सम्पादक

।। बोधायनवृत्तिकार जगद्गुरु श्रीपुरुषोत्तमाचार्यायनमः ।।

।। आनन्द-भाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यायनमः ।।

* नित्यकृत्य बोधक प्रबन्धः *

।। श्रीमते रामानन्दाचार्यायनमःनमः ।। श्रीमन्मारुतनन्दनायनमः ।।

।। श्रीसीतारामाभ्यां नमः ।।

रामदासं हनूमन्तं नत्वाऽऽचार्य शिरोमणिम् ।
वक्ष्ये श्रीजानकी राम भक्तानाँ कार्यमुत्तमम् ।।

रहस्य प्रकाशिका व्याख्याः—ग्रन्थ (प्रबन्ध) की निर्विघ्न समाप्ति के लिए ग्रन्थकार मंगल करते हैं। श्रीराघवेन्द्र सरकार के शिष्य (दास) आचार्य शिरोमणि श्री हनुमानजी को प्रणाम करके मैं भगवान् श्रीसीतारामजी के भक्तों का श्रेष्ठ कैंकर्य विस्तार तथा उत्तम रीति से कहूंगा।

मूल—तत्रादौ जानकीरामोपासकानां तत्सादृश्योपपत्तये तत्सदृश रूप चिन्तनस्य तद्धृत धनुर्बाणादि धारणस्य तद्धृत सिंदूर विन्दु धारणस्य पीतादिवस्त्र धारणस्य चेत्यादेरावश्यकत्वमुपपद्यते।

र०प्र०व्या०—कैंकर्य करने से पूर्व श्रीसीतारामजी के उपासकों को उनके सदृश होने के लिए उनके समान रूप का चिन्तन उनके द्वारा धारण किए गए धनुष बाण धारण तथा उनके (श्रीजानकीजी के) द्वारा धारण किया गया सिन्दूर विन्दु (बिन्दी) तथा पीले वस्त्रादि का धारण करना अत्यावश्यक है। तत्सदृश होने में तत्सदृश रूपचिन्तनादि में प्रमाण देते हैं।

मूलः—यो यंस्मरति सतद्रूपोभवति योयच्छ्रद्धः स एव सः,
देवोभूत्वा देवयजेन्नादेवो देवमर्चयेत् ।।

र०प्र०व्या—जो जिस रूप को स्मरण करता है वह तद्रूप हो जाता

है, जो जिसमें श्रद्धा करता है वह अति श्रद्धा वशात् वही हो जाता है, देवता होकर देवता की पूजा करे देवता हुए बिना देवपूजन न करें।

मूलः—इत्यादि वचनेभ्यः तत्र पूजकस्य स्व पूज्यदेवतात्मकत्वानुपपत्तेस्तदंगी कारे तस्य सद्यजमानुपपत्तेश्च । "गंगायां घोषः" अत्र गंगा पदस्य देव सदृशे लक्षणा देव सदृशो भूत्वा इत्यर्थः ।

र० प्र० व्या०—देवता होकर देवता की पूजा करे, इस स्थल पर यह शंका होती है कि "देवोभूत्वेत्यादि" बचनों से पूजा करने वाला अपने पूज्य देवता का ही रूप होकर पूजन करे, यह कैसे सम्भव है? पूजक अपने पूज्य देव रूप नहीं हो सकता है यदि हम पूजक को पूज्य अर्थात् इष्टदेव रूप स्वीकार करलें तो वह पूजन कैसे करेगा क्योंकि पूज्य पूजक भाव भेद होने पर ही होता है अतः जैसे "गंगायां घोषः" इस वाक्य से तात्परयानुपपन्न होने के कारण शाब्द बोध नहीं होता है तदर्थ गंगा पद की गंगा तीर में लक्षणा की जाती है ततः गङ्गा पर आभीर पल्ली है ऐसा शाब्द ज्ञान होता है ठीक उसी प्रकार देवपद की देव सदृश में लक्षणा स्वीकार है अतः देव सदृश होकर देव पूजन करें, यह शाब्द बोध होता है।

मूलः—तच्च सादृश्यं द्विविधं आभ्यान्तरं वाह्यश्च तद्द्वयथादौ मंत्र महोदधि तंत्र शास्त्रोक्तरीत्या सूक्ष्म शरीरस्य वाय्वग्न्यादि बीजैः शोषण दहनाभ्यां भस्मीकृतस्य तत्प्लावन पिण्डी करणादिना दिव्य शरीरं स्वेष्ट देव कैंकर्यानुरूपं निष्पाद्य तत्र प्राणप्रतिष्ठा मंत्रेण प्रतिष्ठां कृत्वा ।

र० प्र० व्या० — "देवसदृशोभूत्वा" इस वाक्य से सादृश विशिष्ट का बोध होता है यहाँ जिज्ञासा होती है कि सादृश्य पदार्थ क्या है किन्तु तद्गत भूयोधर्मवत्वम्" रूप सादृश्य पदार्थ के अति प्रसिद्ध होने से आचार्य सादृश्य के भेदों (प्रकारों) निरूपण करते हैं तच्च ग्रन्थ द्वारा वह सादृश्य आभ्यान्तर और वाह्य भेद से दो प्रकार का होता है जैसे

कि आभ्यान्तर सादृश्य मन्त्रमहोदधि आदि तन्त्र शास्त्रों में इस प्रकार है कि सूक्ष्म शरीर का वायु अग्नि आदि के बीजों से शोषण और दहन करके भस्मीभूत अंश को आप्लावित करने के पश्चात् पिण्डी भूत बनाकर इष्टदेव के कैंकर्यानुरूप दिव्य शरीर का निष्पादन करें जिससे कामादि दोष नहीं होंगे यह भावनामय शरीर है पुनः इस शरीर में प्राणप्रतिष्ठा की विधि से प्राण प्रतिष्ठा करें।

मूलः—तदनन्तरं प्रणव संपुटितानि स्वमंत्रवीजं सम्पुटितानि वा मात्रिकाक्षराण्यकारादि क्षकारान्तानि सृष्टि स्थिति संहार क्रमेण विरक्तः सन्यासी ब्रह्मचारी तु सृष्टि स्थिति संहार सृष्ट्यन्तेन् गृहस्थस्तु सृष्टि स्थिति संहार सृष्टिस्थिति क्रमेण मस्तकाननाक्षि करणाद्यंग प्रत्यङ्गेषु-विनस्य स्वमंत्राक्षराणामपि मस्तकादि षट्स्थानेसु सृष्टि संहार स्थिति सृष्टि क्रमेण न्यासेन तत्पद्न्यासेन च स्वेष्ट भूषणादि न्यासेन च वहि-स्तदायुधादि च स्वेष्ट देवसदृशोभूत्वेत्यर्थः। देवं = स्वेष्ठ देवं यजेन्नादेवो त्युक्त रीत्या तत्समीप गमनयोग्यं तत्सदृशं स्वस्वरूपं निष्पाद्य वहिस्तदा-युधादि धारणम् कृत्वेत्यर्थः इत्येकोऽर्थः।

र०प्र०व्या०—उसके बाद विरक्त (महात्मा) सन्यासी अ से लेकर क्ष पर्यन्त मात्रिकाक्षरों को प्रणव (ॐ) या अपने गुरु प्रदत्त मन्त्र के बीज से सम्पुटित करके सृष्टि स्थिति संहार क्रम से मस्तक मुख नेत्र कर्णादि अंग प्रत्यङ्ग में न्यास करे तथा ब्रह्मचारी सृष्टि स्थिति संहार पुनः सृष्टि क्रम से करे। गृहस्थ सृष्टि स्थिति संहार पुनः सृष्टि स्थिति क्रम से उपर्युक्त मात्रिक अक्षरों में न्यास करे और सभी लोग अपने मन्त्र के अक्षरों से मस्तकादि ६ स्थानों में न्यास करे यह अक्षर न्यास है किञ्च मन्त्र के पदों द्वारा भी न्यास करे, अपने इष्टदेव के भूषणादि का न्यास तथा बाहर उनके आयुधादि (धनुषबाण) धारण करे ततः स्वेष्ट देव सदृश होगा। देवं स्वेष्ट देवं यजेन्नादेवेत्युक्त नियम से अपने इष्ट के सन्मुख जाने योग्य अपने स्वरूप का निष्पादन और बाहर से

धनुष बाणादि उनके आयुध धारण करे यही प्रथम सादृश्य नामक हुआ। और बाहर से धनुष बाणादि धारण वस्त्र धारण करना माना जाता है।

मूलः – द्वितीयस्तु (ना देवोदेवमर्चयेत् इत्यस्य) देव सदृशो भूत्वा" स्वस्वरूपाकारतस्तत्सादृश्यं विहाय मंत्रान्तरादि न्यासेन स्वेष्ट देवाधृतायुधादि तिलकादि धारणेन च तदसदृशो भूत्वेऽर्थः अनेन श्रीजानकीरामभक्तानाँ षडक्षर जपपराणां शंख चक्र धारणस्यानौचित्यं तथा धनुर्बाणाद्य धारणस्याज्ञान मूलकत्वं सूचितं भवति।

र०प्र०व्या० — तथा च देवो भूत्वा देवं यजेन्नादेवोदेकार्चयत् इस श्रुति में द्वितीय न अदेवः इत्यादि पद का अर्थ है देव सदृश न होना अर्थात् देव स्वरूप से विभिन्न अपना स्वरूप सम्पादन करके अभिप्राय यह है कि अपने स्वरूप और इष्ट स्वरूप में सादृश्य छोड़कर पूजा में तत्पर न हो। अन्य मन्त्र अन्य अक्षरों के द्वारा न्यासादि स्वेष्ट देव द्वारा न धारण किया हुआ आयुध (चक्रादि) तिलकादि धारण करने पर देव (इष्टदेव) के सदृश नहीं माना जाता है अर्थात् द्वितीय अदेव पद से इष्टदेव से भिन्न (असदृश) होकर अर्चना न करे यह बोधित हुआ। इस द्वितीय निषेध परक पद से यह सूचित हुआ कि श्रीसीतारामजी के भक्त जो षडक्षर जप में निरत हैं उन्हें शंख चक्र धारण करना अनुचित है। और धनुष बाण धारण करने के विपरीत न धारण करना अज्ञानता है अर्थात् धनुषादि न धारण में श्रुत्यादि प्रमाण न होकर उनकी अज्ञानता ही प्रमाण है।

मूल :— अन्यथा देवोभूत्वा देवं यजेन्नादेवोदेवमर्चयेंत, इति स्वेष्ट देव सादृश्य विधायक तद् सादृश्य निषेधक बचन बिरोध्ययायुधादि धारकस्य स्वेष्ट देव यजनयोग्यताऽभावेन तत्कृतं यजनादिकम् सर्वं व्यर्थं भविष्यति।

र०प्र०व्या—आचार्य श्री उक्त शंख चक्र धारण में अनौचित्य

बाणादि धारणाभाव में अज्ञान को प्रमाण सूचित किए यदि कोई इस ज्ञापन को न मानकर विपरीत आचरण करे अर्थात् धनुष बाण का त्याग और शंख चक्र धारण करे तो "देवोभूत्वादेवं" इत्यादि श्रुति. वचनों से जो स्वेष्ट देव सादृश्य का विधान तथा इष्टदेव असादृश्य का निषेध किया गया है। इस प्रतिपाद्य (अर्थ से विपरीत होने के कारण अपने इष्टदेव के पूजन की योग्यता नहीं प्राप्त कर सकेगा और योग्यता के बिना उसके द्वारा किया गया पूजनादि सब व्यर्थ हो जायेगा।✻

मूल :—अतः उपासकः स्वेष्ठ देव यजन योग्यतार्थं तत्सदृश स्वस्वरूपविज्ञान पूर्वकं तद्वस्त्रभूषणायुधादि धारणादिना स्वस्य तत्सादृश्यं निष्पादयेत् देहावसानकाले च तादृश स्वरूप स्मृत्यर्थं सर्वदा स्वेष्ठ देव सारूप्यमात्मनो भावयेत्।

र० प्र० व्या० —इसलिए उपासक अपने इष्टदेव के पूजन की योग्यता के लिए इष्टदेव सदृश अपने स्वरूप को जानकर उसके वस्त्रादि धारण करके अपने को इष्ट सदृश बनाये और देहत्यागकाल में उस स्वरूप की स्मृति के लिए हमेशा अपने इष्टदेव के स्वरूप में अपने स्वरूप में एक सादृश मानकर उसका चिन्तन करे कि हम ऐसे हैं। अन्त में इष्ट के सदृश रूप पाकर साकेत में उनकी सेवादि करेगा—

अब आचार्य श्री उक्त प्रमाण देते हैं कि—

मूल :—सदारामोहमित्येतत्तत्त्वतः प्रवदंतियेनते संसारिणो नूनं राम एव न संशयः "यो यंस्मरति सद्रूपोभवति," यो यच्छ्द्धः स एव सः। यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेबरं तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावितः॥ इत्याद्याः स्मृत्योऽप्युक्तार्थस्य बादिन्यो बहवः सन्ति।

✻ जैसे योग्यता के बिना लौहादि पात्र में सिंहनी का दूध नहीं रखा जा सकता है और रखने पर दूध और पात्र दोनों से हाथ धोना है यही स्थिति यहाँ भी है।

र०प्र०व्या—जो सर्वदा अहंरामः (रामोहं) ऐसा याथार्थ्येन संदेह रहित चिन्तन करते हैं और अहं रामोऽस्मि ऐसा कहते हैं। वे श्रीराम स्वरूप ही है इसमें सन्देह लेशमात्र भी नहीं है। यह रामतापिनी श्रुति भगवती का कथन है तथा जो जो जिसे सदा स्मरण करता है हे अर्जुन जो शरीर मोचनाकाल में जिस जिस भाव से भावित रहता है वह उसी रूप को प्राप्त होता है। ❋

मूलः—तत्र प्राणायाम पूर्वकोपासकस्य स्वरूप माहं "उपासको यं रम्" आभ्यां वाय्वाग्नि वीजाभ्यां सपापपुरुषस्य लिङ्ग शरीरस्य शोषणं दहनञ्च कृत्वाऽनन्तरं य मिति वायु बीजस्य द्वात्रिंशद्वार जपेन पापपुरुषस्य भस्मदक्षिणनासा द्वारा वहिर्निः क्षिप्यावशिष्ठं लिंग शरीरस्य भस्मवभित्येन पिंगलयापूरकेन षोडशबार जपितेन पृथिवी वीजेन पिण्डी कृत्य तस्य पिण्डस्म लम् इत्येनन सुषुम्नया कुम्भकेन चतुष्टषष्विारं जपितेन। स्वर्णं पिण्डाकारं कृत्वा हमित्येन इड़यारेचकेन द्वात्रिंशत् वार जपितेन आकाश वीजेन स्वेष्टदेव सेवानुरूपं स्व वांछिताकारं दिव्य विग्रहं विभाव्य तंच स्वष्ट मंत्राक्षरादिन्यासेन स्वेष्ट देव सदृश सम्पादयेदित्येतसर्वं तंत्र शास्त्रे प्रसिद्धम्।

र०प्र०व्या०—अब तंत्र शास्त्रादि में प्रतिपादित ईष्टदेव सादृश्य विधायक क्रिया कलापों को कहते हैं सर्वउपासकों को चाहिए कि वे वायु वीज "यं" से पाप पुरुष का शोषण तथा अग्नि वीज "रं" से लिंग

❋ जैसे—इस पर श्रीमद्भागवत् का सुप्रसिद्ध पुरंजनोपाख्यान पढ़ना सुनना समझना चाहिए। एवं जड़भरत का आख्यान।

दो०—एक मृगा के कारने भरत धरी दुइ देह।
तुलसी तिनकै कौन गति, जिनके बहुत सनेह ॥

(मानस में मारीच सन्दर्भ दृष्टव्य)

ये सब स्मृतियां पूर्वोक्त अर्थ का ही अनुवाद करती हैं।

शरीर को भस्म करे तत्पश्चात् "यं" बीज को ३२ बार जपकर दाहिनी नासिका द्वारा अर्थात् नाक के दायें छिद्र से पाप पुरुष के भस्म को बाहर फेंक दे तथा शेष लिंग शरीर के भस्म को पृथिवी बीज "व" को पूरक प्राणायाम् करते हुए १६ बार जपकर पिण्डीभूत करके उस पिण्ड को जल का बीज 'ल' ६४ बार जपते हुए कुम्भक प्राणायाम करके सुवर्ण पिण्ड के आकार का चिन्तन करे ततः रेचक प्राणायाम में आकाश बीज 'ह' को ३२ बार जपकर अपने देव (इष्टदेव)के सेवायोग्य अपनी अभिलाषानुसार आकार की भावना करे यह अभिलाषिताकार दिव्य होगा इसमें मायाजनित दोष नहीं होंगे तत्पश्चात् अपने इष्टदेव के मन्त्राक्षरों का न्यास तथा भूषणादि का न्यास एवं धारण करे और आयुधों का न्यास तथा धारण करे ध्यान रखें कि न्यास और धारणादि कर्म स्थूल शरीर में करना है ।

मूल—अतः श्रीरामोपासकैः पीत बस्त्र भूषण धनुर्वाणादि तन्मुख्यायुधानि चावश्यं धार्य्याणि तथा जानक्युपासकस्य तत्प्राप्ति कामस्य तत्समान वस्त्रभूषण धनुर्वाण चंद्रिका मुद्रिकादि सिंदूर विंद्वादि चावश्यं धार्य्यं, तद्युगलोपासकस्य तत्प्राप्ति कामस्य तादृश वस्त्रादिकं चँन्द्रिका मुद्रिका सहितं धनुर्वाणादिकं सिंदूर विन्दु मध्यगं तिलकं चावश्यं धार्य्यं, तद्धारणं विना तद्युगलोपासकत्वाऽसिद्धेः ।

र०प्र०व्या०— इसलिए श्रीरामोपासकों को पीतवस्त्रादि धनुष बाण इत्यादि धारण करना चाहिए तथा श्री जी के उपासकों एवं उनकी प्राप्ति इच्छा वालों को उनके सदृश वस्त्र भूषण चन्द्रिका मुद्रिकादि अवश्य धारण करना चाहिए सिंदुर चिन्ह तो अवश्य ही । किञ्च युगलोपासकों को एवं उन दोनों को प्राप्य मानने वालों को तो चन्द्रिका मुद्रिका वस्त्र धनुष बाणादि सिंदूर तथा मध्य में (सिंहासन के ऊपर) विन्दु चिन्ह वाला तिलक तो अवश्य ही धारण चाहिए क्योंकि दोनों श्री जी एवं राघवेन्द्र के सादृश्य के विना युगलोपासकत्व ही नहीं सिद्ध

होगा, अभिप्राय यह है कि जैसे महिष में गोत्व न होने से उसे गौ कोई नहीं सिद्ध कर सकता है उसी प्रकार सादृश्य विधायक चिन्हों के बिना युगलोपासकत्व नहीं हो सकता है। अतः भुजाओं में धनुष बाण अवश्य अंकित (छाप) कराइये, और विन्दु तिलकादि अवश्य धारण करें।

मूलः—तदुक्तं नांकितो धनुर्वाणभ्यां न मन्त्रोऽस्ति षडक्षर न नाम राम सम्बन्धिन रामोपासको भवेत् ॥ इत्यादि यो वै नित्यं धनुर्वाणांकितो भवेत् स पात्मानं तरति स संसार तरति, स भगवदाश्रितो भवति, स भगवद्रुपो भवति,, इत्यर्थवणी या श्रुतिः ॥

र० प्र० व्या०—सम्प्रति आचार्यप्रवर रामोपासकत्वा भाव मेंप्रमाण उदधृत करते है। नांकितो ग्रन्थ द्वारा जो धनुष बाण से अंकित नही हैं और षडक्षर मन्त्र नही धारण किये हैं और श्रीराम सम्बन्धी रामदासादि नाम नही है वह रामोपासक नही है और भी जो प्राणी धनुषादि से अकित होता है वह सब पापों से तर जाता है संसार से पार हो जाता है वह भगवदाश्रित होता है और अधिक क्या वह भगवद्रूप ही होता है। उक्तचिह्न धारण करने वाले रामोपासक है यह फलितार्थ हुआ। अतः श्रुति अर्थर्वणीथ है (अथर्ववेदकी है) । इदांनीं आचार्य श्री युगलोपासना की श्रेष्ठता प्रतिपादिय करते हैं।

मूलः—श्री जानक्युपासनां बिहाय केवल स्वोपासना परं न भावनास्पदं स्वरूपं दर्शयति न च तं स्वं प्रापयति, श्रीरामः यदा च प्रापयति स्वं तदा श्री जानक्युपासना द्वारैव इत्याह श्रीजानकी स्तवराजे ॥ कदाचिच्द्धी शिवोरूपं ज्ञातुमिच्छुर्हरेः परम्। दिव्य वर्ष शतं ध्यात्वा विधिना विधि वेदिना ॥१॥ ज जाप परमं जाप्यं रहस्ये स्थित चेतसा। प्रसन्नोऽभूत् तदादेवः श्रीरामकरुणाकरः ॥ २ ॥ मंत्राराध्येन [illegible] भजतीयः सतांप्रभुः द्रुष्टुमिच्छसि यद्रूपं मदीयं भावनापदं ॥ ३ ॥ ह्लादिनीं हरेः

शक्ति स्तूयाः सात्वत् संमताम् । तदाराध्यस्तदारामस्तदधीनस्तथा बिना ।। ४ ।। तिष्ठामि न क्षणं शम्भो जीवनं परमं मम । इत्युक्तादेवदेवेशो वशीकरण मात्मनः ।।५।। पश्यतस्तस्य रूपं स्वमंतर्द्धीनं दधौ प्रभुः ।।

र०प्र०व्या— जो उपासक श्री जी की उपासना छोड़कर मात्र श्रीरामजी की उपासना करते हैं उन्हें प्रभु अपने भावनामय स्वरूप का दर्शन नहीं कराते हैं और अपनी प्राप्ति भी नहीं कराते, जिस समय श्रीरामजी अपने परम स्वरूप (सर्वश्रेष्ठ रसमय) का दर्शन एवं अपनी प्राप्ति कराते हैं तो उसमें श्रीजानकीजी की उपासना ही कारण बनती है अर्थात् श्री जी की उपासना के बिना प्रभु का परम रूप का दर्शन अशक्य है। यहाँ परम रूप से शृँगार रसादि से भावित यौवनावस्था का स्वरूप विवक्षित है। अन्यथा बालरूपादि का दर्शन एवं भगवद् प्राप्ति वाले कागभुण्डि बिना श्री जी की उपासना के ही थे उनके कथा प्रसंगों से विरोध होगा। अतएव श्रीजी की उपासना विरहिता सूर्पणखा को भगवत्प्राप्ति के अलावा हानि उठानी पड़ी। इससे सिद्ध हुआ कि श्रीजी की उपासना बिना परम रूप का दर्शन प्राप्ति अशक्य है। यही बात श्री जानकी स्तवराज में कही गयी है कि किसी समय शिव जी भगवान के परमरूप का साक्षात्कार करने के लिए वेद विधि से दिव्य १०० वर्ष परम् जाप्य षडक्षर राम मन्त्र का जप जब एकाग्र चित्त से किए इससे करुणा के सागर श्रीराम जी प्रसन्न हुए। प्रगट हुए क्योंकि वे प्रभु सत्पुरुषों से मन्त्र (षडक्षर) के द्वारा आराध्य हैं। श्री रामजी बोले कि आप जिस शृगार रसादि से भावित रूपका दर्शन करना चाहते हैं उसके लिए हमारी आह्लादिनी शक्ति पराशक्ति की उपासना कीजिए मैं उनसे आराध्य हूँ उनके बिना क्षण भर नहीं रह सकता, वे ही मेरा जीवन हैं। ऐसा अपने वशीकरण का उपाय बतला कर श्रीरामजी शिवजी के देखते अन्तर्धान हो गये।

...यव :— इत्यादिना अतस्तद्युगलोपना परत्वेन भवितव्यं। तत्प्राप्ति

कामस्य तस्यैव भूतस्य धृतधनुर्वाणादि कस्यापि श्रीजानकी धृत सिंदूर विंदुधारणं विना न युगलोपासकत्वमुपपद्यते, यतोऽतस्तेन सिंदूर विन्दु मध्यगं तिलकं चावश्यं धार्य्यम् ।

र० प्र० व्या०—अत: युगलोपासक ही होना चाहिए श्रीरामजी की प्राप्तीच्छा वालों को उनके धनुष वाणादि धारण करने पर भी श्री-जानकी जी के सिंदूर बिन्दु (सिंहासन के ऊपर) धारण के बिना युगलो पासक नहीं मानाजा सकता है यह शास्त्र से फनितार्थ निकल । इसलिए उपासकों को सिंदूर बिन्द वाला तिलक अवश्य धारण करना चाहिए ।

मूल—तदुभवोपासकत्वोपपत्तये ह्रीं वीजोपरिस्थस्यार्थ: सृष्टि शब्द सृष्टि कारणत्वेन व्याख्यातस्य तापिनी टीका कारेणत्येवं भूतस्य विंदो जानक्याञ्च ।

र० प्र० व्या०—और भी जैसे ह्रीं वीज के ऊपर जो विन्दु वह शब्द सृष्टि और अर्थ सृष्टि का कारण भूत है क्योंकि महत्तत्व से अहंकार बाद में तन्मात्रा (अहंकार से ही) तन्मात्रा से पञ्चमहाभूत उससे संपूर्ण विश्व उत्पन्न हुआ और विन्दु से नाद, नाद से परा आदिक वाणी हुई यह तो शब्द सृष्टि है । दूसरा अर्थ सृष्टि ऊपर कही गयी अत: विन्दु और महत्तत्व में अभेद होने से विन्दु ही शब्द सृष्टि अर्थ सृष्टि का कारण भूत तापिनी टीकाकार ने भी बताया ऐसा जो विन्दु और श्री जानकीजी दोनों में ऐक्य हैं जैसे कि—

मूल :—श्रीरामसानिध्यवशाद्ञ्जगदुत्पत्तिस्थिति संहार कारिणी सा सीता भगवती ज्ञेया । इति श्रुत्या जगत्कारणत्वेन गीताय: साधर्म्यात् अर्धमात्रात्मकोराम: इति रामरूपार्द्ध मात्रासंनिहितस्य विन्दो: रामसानिध्य वशात् इति श्रुत्यारामसंसिनहितत्वेनोक्ताया: जानक्याञ्च सर्वथैक्वोपपत्तेञ्च जानकी रूपो विंदुरवश्यधार्यस्तदुक्तै: ।। तदुक्तं तिलकं रामरूपेण विंदु रूपेण भूमिजाधृत्वा श्रीरामभक्तानामग्रगण्यो गुण्नीं हे: ।।

र०प्र०व्या० —उक्त श्रुति द्वारा कहा गया है कि श्रीजानकीजी श्रीराम के सानिध्यवशात् जगत् की उत्पत्ति पालन और संहार करने वाली हैं यही भगवती सीता हैं ऐसा जानना चाहिए । इस जगद् कारणत्व प्रतिपादिका श्रुति द्वारा श्रीसीता और विन्दु में जगत्कारणत्व रूप साधर्म्य बोधिता हुआ तथा (रां) बीज में अर्ध मात्रा स्वरूप श्रीराम तथा च वहीं सन्निहित विन्दु "राम सानिध्य वशात्" इस श्रुति द्वारा उक्त श्रीजानकीजी के साथ अभेद भाव को प्राप्त हुआ अर्थात् विन्दु और श्रीजानकीजी में कोई भेद नहीं है । इसीलिए जानकी स्वरूप विन्दु तो उनके भक्तों द्वारा अवश्य धारण किया जाना चाहिए । और कहा भी गया कि श्रीराम स्वरूप तिलक तथा श्रीजानकी स्वरूप विन्दु को श्रीरामभक्तों में अग्रगण्य हनुमदादि ने धारण किया । यह स्मृति वचन है ।

मूल :— किंच सविदूर्द्ध पुण्ड्रस्य श्रीजानकी रामरूप वह्नि वीज रूप त्वाच्च सविंदुमेव तिलकं धार्य्यं तदुक्तैः तथाहि वह्नि वीजस्थ स्वर हीनरेफस्य भ्रुवोर्मध्येऽर्द्धचंद्राकारेण धारणात् तदुपरिभ्रुवोः शिरः भागमारम्भ ललाट केश पर्यन्तम् वीजाकारयोरेखादयोधारणात्' पुनर्वीजोपरिस्थस्य विंदो वर्ण विपर्य्ययरीत्या तिलकाकारगतयो रेफा कारयोर्मध्ये धारणात् वह्नि वीजस्यै व तिलकाकारेण श्रीजानकी रामभक्तानां शिरसि वर्तमान त्वमुपपद्योते धारयंति च तदनन्य शरणास्तथैव वुद्धया ।

र०प्र०व्या०—किंच विन्दु सहित ऊर्ध्वपुण्ड्र श्रीराम और श्री जानकी स्वरूप ही हैं क्योंकि यह तिलक वह्नि बीज रूप है यह बात श्री "राम सानिध्य" इस श्रुति से ज्ञापित होती है अतएव विन्दु विशिष्ट तिलक उनके भक्तों को अवश्य करना चाहिए जैसे कि वह्नि बीज का जो स्वर रहित रेफ है उसे भौंहों के मध्य भाग में अर्धचन्द्राकार रूप में धारण करे उसके ऊपर भौंहों के शिर वाले भाग से ललाट के केश पर्यन्त बीज के दोनों अकारों को धारण करे पुनः बीज के ऊपर स्थित विन्द्वयव की विपर्यय करके जो तिलक का आकार बना है उसमें अर्ध-

चन्द्राकार रेफ के ऊपर धारण करे इस प्रकार वह्नि वीज ही तिलक रूप से श्रीसीतारामजी के भक्तों के मस्तक पर विराजमान है। यह अर्थ उपपन्न हुआ और उनके अनन्य शरणागत भक्त इसी बुद्धि से धारण भी करते हैं।

मूल—किं च श्रीजानक्याः श्रीरामाति प्रिय त्वात् इत्युक्तादेव देवो वशीकरणमात्मनः' इत्युक्तेस्तस्यतद्वशी भूतत्वाच्चविन्दु श्रीराम मस्तके विंदुरवश्यं कार्य्यः नतु चिह्नान्तरं तत्र कार्य्यम्। अन्यथा तस्य तच्चिह्न रूप देवता दासत्वापत्तेः।

र० प्र० व्या०—और श्रीजानकीजी श्रीरामजी को बहुत ही प्रिय हैं और उन्हें बश में किये हैं यह बात "इत्युक्तोदेवदेवेश" इस पूर्वोक्त वचन से मालूम होती है अतः श्रीराम के मस्तक पर भी विन्दु अवश्य धारण करे। क्योंकि वह श्रीजानकीजी के वश में हैं दूसरा चिह्न न धारण करे अन्यथा दूसरे चिह्न के प्रतिपाद्य देवता के दासत्व की आपत्ति श्रीरामजी में होने लगेगी।

मूल— किं च "पादामात्रामात्राश्चपादाः" इति माण्डूक्यश्रुत्या, सीतारामौ तन्मयावत्र पूज्यौ, इति श्रीरामतापिनी श्रुत्या च, "वायुर्यथैकोभुव न प्रविष्ठोजन्ये पंचरूपोवभूव। कृष्णस्तथैकोऽपि जगद्धितार्थं शब्देनासौपंच पदवी वभूव॥ इति गोपाल तापिनीय श्रुत्या च भगवद्विषयक वाच्य वाचकयोः सर्वथैक्योक्तेः तारकोपरिदृष्टस्य श्रुतस्य च विंदोः सर्वथा तद्रूप श्रीरामललाट धृतत्वोपपत्तेः श्रुति प्रमाणको विंदुरवश्यं श्रीराम मस्तके कार्यः।

र० प्र० व्या०—और "पादामात्रामात्राश्च" इत्यादि माण्डूक्य श्रुति से तथा "सीतारामौतन्मयावित्यादि" श्रीरामतापिनी श्रुति द्वारा किन्च वायुर्यथोको भुवने प्रविष्ट! इत्यादि श्रुति वोध्य जो अर्थ "जैसे वायु एक होने पर भी जन्यों (उत्पत्तिशीलो) में पाँच प्रकार के नीं हो जाती

है उसी प्रकार श्रीकृष्ण के विषय में गोपाल तापिनी श्रुति भी कहती है कि श्रीकृष्ण शब्द रूप से पञ्च प्रकार के हुए। उक्त श्रुतियों से सिद्ध हुआ कि भगवद् विषयक जो वाचक तथा उनका (वाचकों का) वाच्य आपस में अभिन्न होते हैं अतः तारक बीज के ऊपर दृश्यमान तथा प्रामाणान्तरों से ज्ञापित जो श्रीजानकी रूप विन्दु है उसे श्रीराम जी के ललाट पर अवश्य धारण करना चाहिए यह सिद्ध हुआ।

मूल :— किं च सीतारामौ तन्मयौ इत्युभयोस्तारक बीज मयत्व श्रुतेस्तयोर्मध्ये तन्मयत्वेन श्रुताया एकस्या जानक्या ललाटे वीजस्य विंदोः स्मरणाद्धृत त्वाच्च तथैव तन्मयत्वेन श्रुतस्य द्वितीय स्यापि श्रीरामस्य ललाटे बीजस्य विंदोरवश्यं भाव्यात्, द्विदुरेख तद्भाले कार्यास्तद्भक्तैः स्वललाटेऽपि च "ॐ राँ ह्रीं श्रीं क्लीं इत्यादिकं ज्ञेयं"।

र०प्र०व्या०—अब श्री रामजी के तथा उनके भक्तों के विन्दुयुक्त तिलक धारण में श्रुति वोधित युक्ति देते हैं कि "सीतारामौ तन्मयौ" इस श्रुति से श्रीराम औ श्रीकिशोरीजी तारक के बीजमय हैं अर्थात् वीज स्वरूप हैं उन दोनों में बीज स्वरूप से बोधित एक जो श्रीजानकी जी हैं। उनके मस्तक पर वीजस्थ विन्दु का स्मरण तथा धारण देखा जाता है ठीक उसी प्रकार तादृश बीज स्वरूप श्रीराम के मस्तक पर भी बीज में विद्यमान बिन्दु अवश्य होना चाहिए वही बिन्दु उनके मस्तक पर तथा भक्तों को अपने मस्तक पर भी तिलक रूप से करना चाहिए।

मूल—"किं च ॐ राँ ह्रीं श्रीं क्लीं" इत्येवमादिवी जानि सर्वाण्यपि विन्दु शिरस्कानि दृश्यते तेषां स्वस्व वाच्यै सह तादात्म्य संबंधोऽन्यथा नुपपद्यमानः "ॐ राँ ह्रीं श्रीं क्लीं" इत्यादि वीजावाच्यविन्दु शिरस्कानु पपादयतीत्यातः सर्वेषामपित तद्बीज वाच्य देवतोपासकानां तत्तद्बीज पूर्वक तत्तमंत्र वाच्य देवतोपासकानां सविंदु तिलकं धारणं तत्तद्बीज वाच्य स्वे[illegible]येव [illegible]रसि तिलक करणं चोचितं दृश्यते पितद्बीज वाच्यतद्देवतो-

पासका वैष्णवाः शैवा शाक्तदपाञ्च सविंदु तिलक धारिणः ।'

र०प्र०व्या—इदानीं आचार्य प्रवर स्वामि श्री हरिदासजी महाराज किञ्च ग्रन्थ द्वारा विंदु विशिष्ट तिलक के वाहुल्य और अवश्य मेव धारण में जोर देते हैं कि ॐ रां ह्रीं श्रीं क्लीं इत्यादि जो बीज है इन सबके ऊपर विन्दु विराजमान है अतः इन वीजों के वाच्य जो देवता हैं उनके साथ इन वीजों का तादात्म्य है अर्थात् विन्दु विशिष्ट बीजों के विना उनका देवता के साथ सम्बन्ध ही सिद्ध नहीं हो सकता अभिप्राय यह है कि तत्तद्बीजों के वाच्य जो देवता हैं उन देवों के उपासकों को तत्तद्वीज के सहित तत्तन्मंत्र के वाच्य देवों से अभिन्न जो बीज तथा उसमें जो विन्दु तादृश्य विन्दु सहित तिलक करना चाहिए तथा च तत्तद् वीज वाच्य जो देवता उनके शिर पर भी विन्दु वाला तिलक करना चाहिए । इतना ही नहीं आज भी तद्तद बीजों के वाच्य जो तत्तद् श्रीराम कृष्ण शिवादि देवताओं के उपासक वैष्णव, शैव शाक्यादि विन्दु युक्त तिलक वाले देखे जाते हैं ।

मूलः—किं च "सिंदूर विंदु रुचिर द्युति दीप्तमन्तम्" इति प्रमाणतः बिंदोः श्रीजानक्यास्वशिरसि धारणात् जानकी वाचकत्वेन जानकी रूपत्वाञ्च श्रुतमहत्व पर्यायस्य विंदोः तंत्र शास्त्रादौ अर्थ सृष्टि शब्द सृष्टि कारणदृशोक्त्या जात्कारणत्वोपपन्तेः । श्री जानक्यास्तु "श्रीराम सानिध्यवशान्जगदुत्पत्ति स्थिति संहार कारिणी" इति जगत्कारणत्व श्रवणेनोभयोः साधर्म्येण समान कार्यकर्तवेन चैकरूपत्वोपपत्तेः जानक्या श्रीरामस्य नैकयदर्शनवत् विंदोः श्रीराम वाचक द्विमात्रा सामीप्य दर्शनात्तस्य श्रीजानकी वाचकोपपत्तेश्च ।।

र०प्र०व्या०—उक्त ग्रन्थ द्वारा आचार्य श्री विन्दु और श्रीजानकी में अभेद बतलाते हैं । सिंदूर बिन्दु रुचिर द्युति दीप्तिमनन्तं इत्यादि स्मृति वचनों के प्रमाण से विन्दु श्रीजानकीजी के शिर [illegible] रण में [illegible] रती है तथा श्री जी का बाचक होने से तद्रूप ही सिद्ध हुआ तथा महत्तत्व

पर्याय भूत जो बिन्दु वह तन्त्रे एवं शास्त्रों में अर्थ सृष्टि शब्द सृष्टि का कारण कहा गया है श्रीजी को भी "श्रीरामसानिध्य" आदि श्रुतियों द्वारा जगत् कारण कहे जाने से दोनों में साधर्म्य है और एक जगतरूप कार्य कर्तृत्व होने से दोनों में एक रूपता सिद्ध हुई। और जिस प्रकार श्रीजी श्रीराम के निकट ही रहती हैं उसी प्रकार विन्दु भी श्री रामवाचिका जो अर्धमात्रा उसके समीप दिखाई देने से विन्दु श्री जानकी जी का वाचक सुतरं सिद्ध हुआ।

मूल — किं च चारित्र्येणधर्म मार्ग प्रवर्तक जानकी धृत विंदोः श्रुति मूलक्त्वोपपत्तेः सदाचारानुमित स्मृति परिकल्पित श्रुतिप्रमाण कत्वाच्च स्वेष्ट देव जानक्या स्व शिरसि धारणाच्च श्री जानकी राम भक्तानाम वश्येन सविन्दु तिलक धारणं योग्यं।

र०प्र०व्या—और अपने चरित्र से धर्म मार्ग की प्रवर्तिका श्री जी से धृत बिन्दु में श्रुति ही प्रमाण है क्योंकि सत्पुरुषों के आचरण से श्रुति स्मृतिका अनुमान किया जाता है अतः श्रीजी के द्वारा धृतविन्दु तिलक है अतः उनके भक्तों द्वारा अवश्य विन्दु युक्त तिलक धारण किया जाना चाहिए।

मूल :—किं च कान्यकुब्जाद्विजाः सर्वे मागध माथुर वर्जिताः" इति स्मृतेः अशेषोत्तम ब्राह्मण निदान भूताः कान्यकुब्ज ब्राह्मणः च तदन्ये मागध माथुराञ्च ते सर्वे स्व स्वपरम्परा धृतस्य विंदोरेखधारिणोऽद्यापि दृश्यंते इति सर्वेषां सर्वोत्तम ब्राह्मणानां सर्वोत्तम ब्राह्मण मूल भूतत्वेन सर्वोत्तमाचाराणां सदाचारेणानुमितयास्मृत्या परिकल्पितायाः श्रुतेः प्रमाणत्वाच्च सर्वोत्तम ब्राह्मणैर्धृतस्य तदाचानुस्मृति परिकल्पित श्रुति प्रमाणकस्य च विंदोर्धारणं सर्वेषामुचितं ब्राह्मणानां तु विशेषतः ब्राह्मण्यव [illegible]यिनांतु सर्वथा तद्धारणमेवोचितं तन्मूल भूतैः पूर्वतनैः स्म कान्यकुब्ज ब्राह्मणैः सर्वैरपिधृतत्वाच्च तत्त्याग पूर्वक तिलकान्तर

धारिणाः स्वोत्तम परंपरागत धर्म त्यागे नाधार्मिकत्वप्रसक्तेः जात्यन्तर धर्मग्राह कत्वे वर्णशंकरत्व प्रसक्तेश्चत्यलं, ब्राह्मणकुलोत्पन्नानां तिलकांतर धारणनिरासेन तस्मात्सर्बेषां ब्राह्मणानां सविन्दु तिलक धारणं धनुर्वाणादि धारणं चोचितं श्रीरामभक्तानां तु विशेषतस्तद्धारणं तदेव मुक्त श्रुति स्मृति सदाचार प्रमाणकत्वात् उक्त स्मृति बाक्यानुमित श्रुति प्रमाण कत्वाच्च धनुर्वाणादिकमवश्यं धार्यम् । श्रीजानकी रामोपासकैः ॥

र० प्र० व्या० — और कान्यकुब्ज द्विजाः सर्बेमागधमाथूरर्वजिताः' इत्यादि स्मृति वाक्यों से समस्त उत्तम ब्राह्मणों में श्रेष्ठ कान्यकुब्ज ब्राह्मण तथा उनसे भिन्न मागध माथुर आदि भी आज अपनी अपनी परम्परा से धृत विन्दु रूप तिलक के धारण करने वाले देखे जाते हैं। उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों का स्वोत्तम ब्राह्मण मूलभूत जो सदाचार उससे अनुमिता स्मृति और श्रुति ही विन्दु धारण में प्रमाण है अतः विन्दु धारण सभी के लिए उचित ही है किन्तु ब्राह्मणों का तो सर्वस्व ही है क्योंकि उनको मूलभूत पूर्बाचार्य कान्यकुब्जादिकों के द्वारा धारण किया गया है। उसका त्याग करके अन्य तिलक जो धारण करेगा वह अपनी परम्परागत धर्म त्याग करने के कारण अधार्मिक होगा और दूसरी जातियों के अन्य तिलकादि रूप धर्म के ग्रहण करने से वर्णशंकर माना जायेगा । यहाँ तक उत्तम ब्राह्मणों के लिए अन्य तिलक धारण करने का खण्डन किया गया है । अतः विषय विस्तार के भय से आगे नहीं खण्डन किया जायेगा । फलित यह निकला कि सभी ब्राह्मणों को विन्दु तिलक एवं धनुर्वाणादि धारण करना उचित है ही, किन्तु श्रीराम भक्तों का तो सर्वस्व है इस प्रकार श्रुति स्मृति से प्रमाणित धनुर्वाणादि विन्दु विशिष्ट तिलक अवश्य धारण करना चाहिए। श्रीराम तथा श्री किशोरी जी के भक्तों को ।

मूल— अत्राह कश्चित् किं सर्वाण्यापि पौरुषेय वाक्यावित पक्षीकृत्य तत्तन्यानिवाक्यानि श्रुतिविरुद्धार्थकानि तान्युपेक्ष्यामि न्नीं हे तु

प्रत्यक्ष श्रुति विरुद्धार्थ कानि तानि पक्षीकृत्य तत्तन्मूल भूताः श्रुतयोऽनुमेया इत्येवमाह जैमिनीसूत्रं -'विरोधेत्पेक्ष्यं हयसत्यनुमानम्" इति श्रुति विरोधे सतिपौरुषेयम् असतिप्रत्यक्ष श्रुति विरोधे स्मृति वाक्येन तन्मूल भूतायाः श्रुतेरनुमानं कर्तव्यमितितदर्थः । प्रकृते तु धनुर्वाणादि धारण "पराणां वाक्यानां प्रत्यक्ष श्रुतिभिर्विरोधोवगम्यते । तथा = प्राप्यञ्च ब्रह्मणोरूपं प्राप्तुश्च प्रत्यगात्मनः । प्राप्युपायं फलं प्राप्तस्थता प्राप्ति विरोधिनः ॥१॥ वदन्ति सकलावेदाः सेतिहास पुराणकाः । मुनयश्च महात्मानो वेद वेदांग वेदिनः ॥" इत्युक्त पंच विधि वेदार्थेषु मध्य य आद्या चतुर्बिधार्थो ब्रह्म रूपादयस्तेषां मध्ये न कस्यापि विरोधित्वं नापित विरोध्यंग प्रतिपादकत्वमुपपद्यते तेषां वाक्यानामुप पद्यते हि भगवदुपासनांग प्रतिपादकत्वेनोक्त चतुर्विधार्थ मितरेवम् । अन्यदपि-वेदोक्त चतुर्विधार्थ पर श्रुत्युक्तार्थांग प्रतिपादक श्रुत्यर्थोपवृंहण रूपत्वे नोक्त सकल परमार्थ श्रुति मितत्वं चोपपद्यते, तेषां तथाहि नहि परब्रह्म विरोधित्वमुपपद्यते । तेषां परब्रह्मणां श्रीरामेण तत्प्रिया च श्री जानक्या धनुर्वाणादि धारणात् । नापि श्रुति विरोधित्वं धर्मिष्टाग्रेसराणां (धर्म मार्ग चरित्रेण) इति श्रुतेः स्वाचरेणान् धर्ममार्ग प्रवर्तकानां सीतारामादीनां वेद विरुद्ध पदार्थ धारणानुपपत्तेः ॥

र०प्र०व्या०—यहाँ पर उदाहरण रूप से जो 'कान्यकुब्जद्विजादि' इत्यादि वचनों से सर्वोत्तम ब्राह्मणों द्वारा धृत जो विन्दुवादि है उसकी मूलभूत स्मृति, श्रुत्यादि का अनुमान किया गया है । अर्थात् प्रत्यक्ष श्रुति प्रमाण नहीं है उसी प्रकार सत्पुरुषों से गृहीत विन्द्वादि में भी प्रत्यक्ष श्रुति न होने से श्रुति का स्मृति का अनुमान किया जाता है कि धृत विन्दु धनुर्वाणादि श्रुति मूलक हैं सत्पुरुष जो धर्म मार्ग के प्रवर्तक हैं उनसे धारण किये जाने से जैसे मन्वादि सत्पुरुषों से ग्रहीत वेदा[illegible]यव भी उक्त अत्राह ग्रन्थ द्वारा यह आपत्ति उठायी गयी है कि सभी

पौरुषेय वाक्यों को पक्ष मानकर उनकी मूलभूता श्रुतियों का अनुमान किया गया है कि कुछ विशेष वाक्यों का ऐसी शंका होने पर उत्तर देते हैं कि जो वाक्य श्रुति विरुद्धार्थक होते हैं वे तो उपेक्षणीय होते हैं, और प्रत्यक्ष श्रुति से अविरोधी जो वाक्य होते हैं उनको पक्ष रूप से स्वीकार करके उनकी मूलभूता श्रुतियों का अनुमान किया जाता है यही बात जैमिनि सूत्र भी कहता है जैसे—(विरोधे तू पेक्ष्यं ह्यसत्य-नुमानम्) अर्थात् श्रुति विरोध होने पर उपेक्षणीय और प्रत्यक्ष श्रुति विरोध न होने पर स्मृति वाक्यों से उनकी मूलभूता श्रुति अनुपमेय है प्रकृत स्थल में धनुर्वाणादि धारण की इच्छा से उच्चरित वाक्यों का प्रत्यक्ष श्रुति से विरोध तो ज्ञात नहीं होता है। जैसे कि सम्पूर्ण वेद, इतिहास पुराण, मुनि और महात्मा प्राप्य ब्रह्म का रूप, प्राप्ता आत्मा का स्वरूप, प्राप्त्युपाय, प्राप्तिफल और प्राप्ति के विरोधियों को बतलाते हैं। अत: पूर्वोक्त पञ्च प्रकार का जो वेद प्रतिपादित उसमें चार प्रकार के अर्थों में (प्राप्ति फल पर्यन्त) किसी से धनुर्वाण विन्द्वादि धारण का विरोध नहीं है और न तो उनके विरोधी अंगों का समर्थक ही है। अत: धनुर्वाणादि धारण परक वाक्य भगवान की उपासना के अंग भूत होने से (समर्थकतया) चारों प्रकार के अर्थों के मित्र अर्थात् सम्पूरक ही हुए। और भी चारों प्रकार के अर्थों की प्रति पादिका जो श्रुति है उसी श्रुति के अर्थों को वोधित करने से उपवृंहण रूप होकर ये धनुर्वाणादि धारण परक वाक्य श्रुति के मित्र ही सिद्ध हुए। जैसे कि ये वाक्य परब्रह्म स्वरूप के विरोधी नहीं हैं क्योंकि इनका जो अर्थ धनुर्वाणविन्द्वादि है उसे परब्रह्म श्रीराम और श्रीमहा-रानीजी ने धारण किया, अत: ये वाक्य स्वरूप बोधक ही हुए। और श्रुति बिरोधी भी नहीं क्योंकि 'धर्म मार्ग चरित्येण' इस श्रुति द्वारा प्रोक्त "धर्म मार्ग अपने चरित्र द्वारा प्रदर्शित करते हुये श्रीसीता-रामादि वेद बिरुद्ध पदार्थों को कैसे धारण करेंगे अर्थात् नहीं इत ने

उनको अपने आचरण द्वारा कैसे करेंगे फलित निकला कि धनुरादि परक वाक्य श्रुति विरोधी नहीं हैं।

मूलः—नापि प्रत्यगात्म विरोधित्वं पंच संस्कार द्वारा तदुपकारकत्वात् परमेश्वरायुधत्वेन तद्वत्तत्त्वें। न च सकल जीव पूज्यत्वोपपत्तेश्च न च भगवत्प्राप्त्युपाय विरोधित्वं भगवद्-क्येंगत्वेन तदुपकारितया तन्मित्रत्वोपपत्तेः। न च तत्प्राप्तिफल विरोधित्वं तत्सा धनांगत्वेन तत्प्रापकतयातन्मित्रत्वोपपत्तेः। न वा निषेध तदंग्योरन्य तत्वमुपपद्यते तेषां श्रुतीनां 'परभार्यां नाभि गच्छेत् सुरां न पिबेत्, तदुद्रस्यहृद्रत्व यद्विशीर्यंते तद्धिरण्यं रजतमाभूत तस्माद्वर्हिषि रजतं न देयम्। इत्येवमादि निषेधवत् वेदेषु क्वचिदपि तदुक्तार्थस्य निषेधाश्रवणात् धनुर्वाण विद्वादिकं न धारयेत्स्व श्रेय काम इत्येवं प्रत्युच्छी जानकी रामाभ्यां धर्मिष्टाग्रेस राम्यां विद्वादेर्धनुवाणादेश्च धारणात् वेदबिहितं चोपपद्यते। द्वारणस्या तस्तदाचरणानुमिता श्रुतिरपि तत्र प्रमाणमस्ति विमत जानकी रामाचरणं श्रुति प्रमाणकं भवितुमर्हति धर्मिष्टाग्रसर धर्ममार्ग प्रवर्तक चरणत्वात् मन्वाद्याचरणवदिति॥

र०प्र०व्या—किञ्च ये धनुर्वाण धारण परक वाक्य वेद वोधित प्रत्यगात्म (आत्म स्वरूप के) भी विरोधी नहीं हैं क्योंकि वे धनुर्वाणादि पंच सस्कार मे परिगणित होने से जीवों के उपकारक ही हैं ये वाणादि भगवदायुध हैं उन्हें धारण करने से जीव समस्त जीवों का पूज्य हो जाता है क्योंकि वे मोक्षदाता हैं और मोक्ष प्राप्त पुरुष ही ब्रह्मादि आर्ती करते हैं, भगवद्धाम जाने के समय और ये वाणादि से भगवत्प्राप्ति के उपायों से भी आपस में विरोध नहीं है क्योंकि ये भगवद्भक्ति के अंग होने से उपाय के उपकारण होने के कारण मित्रवत् ही हैं तथा च ये धनुषादि प्राप्तिफल के भी विरोधी नहीं क्योंकि प्राप्ति के [illegible]वयव [illegible] के अंग होने के कारण प्राप्तिफल में उपकारक ही हैं। किंच

ये विन्द्वादि प्राप्ति में विरोधी जो निषिद्ध पदार्थ और उन निषिद्धों के अंगभूत भी नहीं हैं क्योंकि भगवती श्रुति "परस्त्री गमन न करे, मद्य न पिये, उस रुद्र का रुद्रत्व प्राप्त होता है अर्थात् एक वर्ष में रोना पड़ता है इसलिए उससे स्वर्ण रजतादि का दान अग्नि में न दें इन निषिद्ध पदार्थों को कही है इस निषेधपरक के समान वेदों में कहीं भी "अपना परम कल्याणेच्छुक धनुष बाण विन्द्वादि न धारण करें ऐसा वाक्य नहीं मिलता है प्रत्युत अपने आचरण द्वारा धर्म मार्ग के प्रवर्तक श्री सीतारामादि द्वारा धनुर्वाणादि धारण करने से उसमें वेद विधेयता ही सिद्ध होती है। इसलिए इनके आचरण से श्रुति का अनुमान किया जाता है कि बिमत जो श्री जानकीराम के आचरण हैं वे श्रुतिमूलक हैं। धर्मिष्टों के द्वारा धर्म मार्ग प्रवर्तकाचरण होने से मनु आदिकों के आचरण के समान यहाँ विमत श्री जानकीराम के आचरणपक्ष है धर्मिष्टादि घटित धर्ममार्ग प्रवर्तकाचरणत्व हेतु है और श्रुतिमूलकत्व साध्य है तथा मन्वाद्याचरण दृष्टांत है।

मूल— किं च इदानीतनानामपि शिष्टानां माध्वनिंवादित्य विष्णु स्वामि सम्प्रदायिनां वैष्णवानां तथा शैवशाक्तादीनां विंदु धारणत्व दर्शनाद्रहूनामनुग्रस्य न्यायाच्च तदाचारानुमित स्मृति परिकल्पिता श्रुतिरपि तत्र प्रमाणं भवति।

र० प्र० व्या०—किं च इस वाक्य के बहुत से शिष्ट जैसे माध्व, निम्बादित्य विष्णुस्वामी, आदि सम्प्रदायों के वैष्णव, शैव, शक्तादि भी विन्दुधारी देखे जाते हैं। अतः उनके आचारों से अनुमति स्मृति और स्मृति से श्रुति का अनुमान किया जाता है अर्थात् अनुमिता श्रुति विन्दु धारण में प्रमाणभूता है।

मूल—यद्वा तदाचारानुमित। श्रुतिरति तत्र प्रमाणं नन्वेवं तत्तदाचार परिकल्पितायाः श्रुतेस्तत्र प्रमाणत्वे सत्यपि धर्मेर्निर्नीं वृंद्वादि

धारणत्व विधायक वाक्यानामपि वेदार्थ विरोधीत्वसिद्धेः । प्रत्युत्तपकारत्वेन तन्मित्रत्वसिध्यत्तोस्तान्यपि पक्षी कृत्य तन्मूलभूताः श्रुतयोनुमेयाः विमतानि वाक्यानि श्रुति मूलकानि भवितुर्मर्हति वेदाविरोधित्वात् मन्वादि प्रणीत वाक्य वदित्येवं विमतान्यवश्यं श्रुति मूलकानि भवितुर्महति वेदार्थोपकार कत्वेन तदुपवृहंण भूतत्वान्मन्वादि प्रणीत वाक्य वद् ।

र० प्र० व्या०—अथवा उन वैष्णवों के आचार से अनुमिता श्रुति ही विन्दूवादि धारण में प्रणाम है । इस प्रकार धनुर्वाणादि धारण में अनुमिता श्रुति-प्रणाम भूत होने से विन्द्वादि धारणत्व करने वाले वाक्य वेदार्थ विरोधी कदापि सिद्ध नहीं हो सकते हैं । प्रत्युत तदुपकारक होने से उनके मित्र (समर्थक) ही सिद्ध हुए । अतः उन वाक्यों को पक्षीभूत मानकर तत्तन्मूल भूता श्रुतियों का अनुमान करना चाहिए । यथा "विमत वाक्य श्रुतिमूलक हो सकते हैं" वेद के अविरोधित्व धर्म वाला होने से (अविरोधी होने से) मन्वादि निर्मित वाक्यों के समान । किञ्च विमत वाक्य श्रुति मूलक है वेदार्थोपकारकत्व तथा वेदार्थोपवृंहणमूलत्व धर्म वाला होने से मन्वादि प्रणीत वाक्यों के समान ।

मूल—इत्येवञ्च उपवृंहणत्वं नाम तत्समानर्थकै र्व्याक्यैः पदैर्वातदर्थ प्रकाशकत्वं तदेव श्रुतिस्मृति तंत्रादि प्रमाणक धनुर्बाणादि धारणं विंदु चांद्रिकादि धारणं चयेतिन्दन्ति पण्डित मानिनः केवल लोक वचन द्वारेतस्ततो द्रव्यार्जनाय तेषाँ श्रुतिः स्मृतिर्ममैवाज्ञातामुल्लंध्यंतु वर्तते । आज्ञाद्रोही ममद्रोही मद्भक्तोपि न वैष्णवः "इति स्मृत्यवभगवद्भक्तत्वेप्य वैष्णवत्वोक्ते भगवद्द्रोहित्वोक्तेश्च सुतरां तत्प्रिय भक्तद्रोहित्वोपपत्तेश्च दुर्गतिर्भाव्या उक्तरीत्या द्रव्योपार्जन हेतुकैहिक सुखाय श्री जानकी रामोपासक धृतधनुर्वाणादि निंदायाः नरक प्रापकत्वात् ।"

र० प्र० व्या०—उक्त अनुमान वाक्य में वेदार्थोपवृंहण भूतत्व का अवयव भूत वेदार्थ वाक्यों के अर्थ के समान अर्थ वाले वाक्यों एवं

पदों के द्वारा वेदार्थ के प्रकाशक जो हैं वे उपवृहण कहलाते हैं इस प्रकार उपवृहण भूत जो स्मृत्यादि उनके प्रमाणों से सिद्ध धनुर्बाण विन्दु चन्द्रकादि धारण करने की निन्दा इधर उधर धन का अर्जन करने वाले पाण्डित्याभिमानी लोग करते हैं "श्रुतिस्मृति मेरी आज्ञा स्वरूप है उसका उल्लंघन करने वाला मेरा द्रोही है मेरा भक्त होने पर भी वैष्णव नहीं है" इस स्मृति वचन से भगवद्भक्त होने पर भी अवैष्णव और भगवद्रोही है। तो अनायास ही भगवान के प्रेमियों के द्रोही हुए अत: शंकर द्रोही भक्त ममेत्यादि वचनानुसार तो उसकी दुर्गति अवश्य होगी। अत: द्रव्योपार्जन के लिए सांसारिक सुख के लिए जो श्री सीता राम जी के भक्तों द्वारा धारण की गयी धनुर्बाणादि की निन्दा करते हैं वे अपने लिए नरक द्वार खुला लिए है।।

मूल—केचिद् स्वपांडित्यमदान्धा: केचिदंध परं परावत: पंडित मानिनश्च वदंति वयमेव वैष्णवा: अस्मदीयागृहस्था च भगवद्भक्ता: नान्य: इति। ते स्वकीयम वैष्णवत्वमन्येषु कर्मादीनुपायान्परित्यज्य भगवद्भक्तयै तत्परेष्वारोपयंति तावत्, यावद्भगवदनन्यभक्त वाधकं वैष्णवत्वा वाधकं स्वजात्यभिमान हेतुकं स्वजातीय कर्म निष्ठावमात्मनो न पश्यन्ति जात्यभिमान वैष्णवत्त्वभि मानयो: परस्परमुपमर्दकत्वात्, नोभयोरेकाहंकार निष्ठत्वेन समानाधिकरण्य मुपपद्यते।।

स०प्र०व्या०—इस केचित्ग्रन्थ द्वारा आचार्य प्रबर कुछ निंदकों का कथन करके उन पर आक्षेप किये है कि कुछ लोग अपने पांडित्य-रूपी मद से अंधे हैं और कुछ अंध परम्परा के अनुयायी भी अपने को पण्डित मानने वाले हैं ये लोग कहते हैं हम ही वैष्णव हैं और हमारे गृहस्थ ही भगवद्भक्त है दूसरा कोई न तो भगवद्भक्त है और न वैष्णव ही। ये अंध परम्परा वाले स्वयं को पण्डित मानने वाले मूर्ख अपना अवैष्णवत्व उन विरक्त महात्माओं में आरोपित करते हैं जो कर्मादि

उपायों का परित्याग कर एक प्रभु की भक्ति में ही तत्पर है। किन्तु इन पण्डितमानियों में अवैष्णवत्व कैसे सिद्ध हैं जिसका ये आरोप करते हैं इस शंका का उत्तर आचार्य प्रवर इस प्रकार देते हैं कि भगवद्नन्य भक्ति में बाधक वैष्णवत्व में बाधक जाति का अभिमान "ब्राह्मणोऽहम् पण्डितोऽहमित्या कारक" तदभिमान ही हेतु है जिसमें ऐसे जो जातीय, जाति सम्बन्धित कर्म उसमें अपने को आसक्त नहीं देखते हैं इससे इन लोगों में अवैष्णवत्व सिद्ध हुआ क्योंकि जात्यभिमान और वैष्णवत्व-भिमान परस्पर एक दूसरे के विघातक हैं। ये दोनों एक कालावच्छेदेन एक ही अहंकार में नहीं रहते अतः इनमें सामानाधिकरण्य नहीं हो सकता है आचार्य श्री कटाक्ष कर रहे हैं कि रे पण्डितमानी तू अपने में ब्राह्मणत्व प्रतिपादन करने के साथ-साथ वैष्णवत्व नहीं सिद्ध कर सकता है—ध्यान रहे उक्ताक्षेप अर्ध वैष्णवों के प्रति हैं।

मूल—तावच्चते तदारोपयन्त्यप्यत्र यावत्स्वाद्याचार्य्यस्य शूद्र कुलोत्पन्नत्वं वाताशित्वं वारद्धति स्मृति विरुद्धत्वँ ब्रिचार्यतलश्चन्ते "श्रुतिः स्मृतिर्ममैवाज्ञा तामुल्लध्यतु वर्तते। आज्ञाछेदी ममद्रोही मद्भ-क्तोषि न बैष्णवः" इत्येवमादि स्मृतेर्येषामाचार्यस्य तदाचार्यत्वमेव श्रुति विरोद्धित्वेन तस्यतदीयानां चा वैष्णवत्वं पुनर्भगवद्रौहित्वं चोप-पादयति।

र०प्र०व्या०:—आश्चर्य है कि ये लोग अपना अवैष्णवत्व जो वैष्णव हैं उनमें आरोपण करते हैं किन्तु अपने आद्याचार्य (शठकोपादि पर दृष्टिपात करके लज्जित नहीं होते) अभिप्राय यह है कि इनकी परम्परा के आद्याचार्य शूद्रकुल में उत्पन्न हुए और स्त्रैण (स्त्री वंश में) थे जो श्रुति स्मृति विरुद्ध है क्योंकि उक्त दोष आचार्यत्व का असाधक विघातक है "श्रुति स्मृत्यादि से विरोध करने वाला भगवद्रोही और अवैष्णव है" इत्यादि स्मृतियों से उनके आद्याचार्य का आचार्यत्व

श्रुति विरुद्ध होने के कारण उनमें और तदनुयायियों में अवैष्णवत्व और भगवद्द्रोहित्व ही सिद्ध करता है ।।

मूल—इदानीं प्रकारांतरेण धनुर्बाणादि धारणं विधीयते । अस्य सम्प्रदायस्य आद्याचार्यो ब्राह्मणत्वाद्युत्तम जात्यभिमानस्य सर्वथा त्यक्तम शक्यस्य केवलम भागवत्वाभिमान बाधकत्वं मत्वा "प्रपत्तौ भक्तौ च, प्रतिनियताचित्तम्" इत्येवमादिवेदांत रामानुज बचनात् विशुद्ध भागवत प्रर्वतनायमत्स्य कूर्मादी नामित वैष्णव विषयिक निकृष्ट बुद्धि निवारणाय चात्मानं तुरीय वर्णं कुलेजनयामास ।'

र०प्र०ब्या०—सम्प्रति अन्य प्रकार से धनुष बाणादि धारक का विधान करते हैं इन लोगों के (आचारी महानुभावों के) आद्याचार्य शठकोप (कॉंची पूर्णादि) स्वामी प्रभृति ब्राह्मणत्वादि श्रेष्ठ जात्याभिमान को छोड़ने में असमर्थ जानकर और भगवत्वाभिमान का बाधक अनुभव करके "प्रपत्तौ भक्तौ चेत्यादि" बेदान्त रामानुज बचनानुसार यह आचार्य अपने को ही चतुर्थ वर्ग में अवतरित हुए, जिसमें विशुद्ध भागवत धर्म का प्रचार हो और वैष्णवों में किसी निकृष्टि बुद्धि न हो अर्थात् बैष्णव चाहे जिस जाति का हो श्रेष्ठ ही हैं ।।

मूलः—अस्ति पूर्बयपौराशेः कापि दक्षिणरोधसि । मण्डले पाण्डय भूपस्य नगरी कारू का ह्वया (१) तत्रासीत्पाद् जातेषु कश्चितभागवताग्रणीः । श्रीमत्यंदत्रीतिनाडींद्रः सीमातीतं गुणोत्वणम् (२) तस्यधर्म चरो नामतन यः सम जायत । चक्रपाणिस्ततो जातः चक्रपाणि परायणः (३) अजायत सुतस्तस्माद्रव दासेति संज्ञितः । सुमितिं सुषुवेसोऽपि सुतं पाटल लोचनम् (४(पुत्रं प्रासूत पकारिं पुत्रं पाटल लोचनः । वयरीति तनयो जातः कारीति रहितस्ततः (५) ततो जातः सुतस्तस्माच्छठ कोप इतीरितः । तमाहुः वयरिजं संतः शठकोपं परां कुशम् (६) व कुला भरणारव्यं च तमेव कारि नन्दनम् (७) इत्यादि श्रीनिवासाचार्य

विरचित दिव्य सूरि चरिताख्यग्रंथ वचनेभ्यः तथैव अस्य तुरीय वर्णावतारोऽपि नाचार्यत्व भंजकः इति चतुर्थ वर्णों भगवत्पाद जन्म कृत सकलेतर वैलक्षण्य युक्तः इति बचने तु द्रविडत्मं वदे न त्रैवर्णिकतांगतः। मद्भक्तोशठकोपाख्यो भविषातिमदिच्छया। हरिर्नित्यो यद्वाजनि मदपरोदेशिकोवरः ॥१॥ इत्येवमादिभ्यो वेदान्त रामानुज मुनि कृत दिव्य सूरि प्रभाव दीपिकाख्यग्रंथ वचनेध्यश्चावगम्यते।

र०प्र०व्या०—पूर्वी समुद्र के दक्षिण तट पर राजा पाण्डय के जनपद में कारुक नाम की नगरी थी। वहां शूद्र कलोत्पन्न कोई परम भागवत था जिसका नाम श्रीमत्पदीतिनाडीन्द्र था। उससे धर्मचर नामक पुत्र जो उत्पन्न हुआ वह उत्तम गुणों से परिपूर्ण था उस धरम चर के चक्रपाणि नामक पुत्र हुआ जिसकी भक्ति भगवान श्रीनारायण में थी कुछ काल पश्चात् उससे रत्नदास नामक पुत्र हुआ उस रत्नदास नामक भगवद्भक्त से अच्छी बुद्धिवाला (पाटल लोचन) नामक बालक हुआ, पुनः उससे प्राकारि नामक पुत्र हुआ तथा प्राकारि के वयरि नाम वाले पुत्र ने जन्म लिया जो सभी कुत्सित कर्मों से रहित था। तदन्तर उनसे (शठकोप) नाम वाले एक भगवद्भक्त ने जन्म लिया। जिसे शठकोप व कुलाभरण्य परांकुश नाम से जाना जाता है उन्हें सब लोग सन्त कहते थे। इस प्रकार श्री निवासाचार्य विरचित (दिव्य सूरि चरित) नामक ग्रन्थ के वचनों द्वारा तो इन शठकोप का जन्म चतुर्थ वर्ण में होने पर भी आचार्यत्व में किंचिन्न्यूनता नहीं है और चतुर्थ वर्ण जो भगवान के पादों से हुआ है अन्य वर्णों से बिलक्षण है, इसलिए शठकोप जी को द्रविड़ मुनि कहते हैं वे त्रिवर्ण में नहीं आते हैं "मेरा भक्त शठकोप मेरी इच्छा से होगा जो मेरी भक्ति में तत्पर तथा श्रेष्ठ आचार्य स्वरूप होगा, अथवा भगवान विष्णु ही जन्म ग्रहण किये नित्य होने पर भी, इत्यादि श्री रामानुज मुनि कृति (दिव्य

सूरि प्रभावदीपिका) नामक ग्रन्थ से विदित होता है अर्थात् यह शठकोप जी भगवद्भक्त होकर भी शूद्र कुल में उत्पन्न हुए।

मूल:—अतो न तस्माच्चक्राद्यांकितत्वस्य न दंड धारणस्य न च प्रणव पूर्वकाष्टाक्षरोपदेशस्य प्रवृत्ति रुपपद्यते। चतुर्थ वर्ण जातस्य तदनधिकारात्। एतेषां वर्णाश्रम त्यागा नंगीकाराच्च शठकोप प्रति विष्वकसेनं कृताष्टाक्षरोपदेशस्याप्यनुपपत्तेः। तस्माद्ग्रहणानधिकारात्। अतः श्रीरामानुजाच्चक्राद्यांकितत्वस्य तथा दंडग्रहणस्य तथाष्टाक्षरोपदेशस्य प्रवृत्तिर्नूतनानयीनाद्धपपद्यते। वदंति महात्मानस्तथैव एषां सर्वेषां चक्राद्यांकितत्वादीनामेतत्प्रवृत्तिदृष्टितः आधुनिकत्वं शास्त्र दृष्टितः सनातनं च यथोपपद्यते। तथा च तिंगल वड्गल धृत तिलकयोर्द्वि-विधयोर्मध्ये एकस्यैव तिलकस्य तदा द्याचार्यं धृत त्वमुपपद्यते। द्वितीयस्य एकस्मिन् ललाटे एकस्मिन्काले द्विधा तिलक धारणानुपपत्तेः कुतो द्वयोः परस्परं विरुद्धाकारत्वात्॥

र०प्र०व्या०:—इन्हीं उक्त कारणों से आद्याचार्यों (शठकोपादि) से चक्रादि का भुजाओं में अंकित करना दण्ड धारण तथा प्रणव (ॐ) सहित अष्टाक्षर के उपदेश की प्रवृत्ति (परम्परा) सिद्ध नहीं हो सकती है क्योंकि चतुर्थ वर्ण में उत्पन्न पुरुष को दण्डादि धारण में अधिकार भगवती श्रुति ने नहीं दिया। अतएव ब्राह्मणत्व विशिष्ट श्री रामानुज से चक्रादि अंकन एवं दण्ड धारण तथा अष्टाक्षरोपदेश (प्रणव सहित) की प्रवृत्ति (परम्परा) निश्चय ही नवीन सिद्ध हो जायगी। और सन्त महात्मा भी इस प्रकार कहते हैं कि इन लोगों की चक्रादि प्रणव विशिष्ट अष्टाक्षर की परम्परा देखने में आधुनिक ज्ञात होती है किन्तु है सनातन शास्त्र दृष्टि से। अर्थात् शास्त्र में दण्डादि धारण तथा प्रणव अष्टाक्षरोंपदेश की चर्चा होने से सनातनत्व है और श्री रामानुजादि से प्रथम ग्रहण होने के कारण आधुनिक है। "यथा च तिंगल" जैसे

कि तिगल वड़गल इन दोनों तिलकों में एक ही तिलक इन महानुभावों के आद्याचार्य धारण किये होंगे यह सिद्ध होता है क्योंकि एक ही ललाट पर एक कालावच्छेदेन (ही काल में) दो प्रकार की तिलक धारण करना सिद्ध नहीं हो सकता यत: दोनों आपस में विरुद्ध आकार वाली हैं किंच दोनों को एक साथ धारण करने में सार्थक्य भी नहीं प्रतीत होता है ।

मूल:—तथापि स्वपाण्डित्य बलाद्युक्ति विशेषैरर्वाचीनस्यैव तिलकस्य शास्त्रीयत्वेन सनातनत्वं प्रतिपादयति । अर्वाचीन तिलक धारिण: द्वितीयस्य प्राचीनस्याप्यशास्त्रीय त्वमाधुनिकत्वं च यथा श्री सम्प्रदायिनोऽष्टाक्षरं द्वयाख्यं चरम वाक्यं चेति मंत्रत्रय रहस्योपदेष्टुस्त द्गहीतुश्च स्ववर्णाश्रम कर्म धर्म निष्ठस्यस्य च श्री संप्रदायित्वं मन्यं तेन मंत्रान्तरोपदेष्टुस्तद्गहीतुश्च न स्ववर्णाश्रम त्यागिनश्च ।

र०प्र०व्या०:—फिर भी अपने पाण्डित्य के बल से कुछ तर्कों के आधार पर आधुनिक तिलक में ही शास्त्रानुमोदितत्व एवं सनातनत्व का प्रतिपादन करते हैं। अभिप्राय यह है कि आधुनिक तिलक में जहां सनातनत्वादि तर्कों से सिद्ध किया गया है वहां शास्त्र तथा श्रुत्यादि निश्चित ही प्रमाण रूपसे उपलब्ध नहीं हो रहे हैं। ये अर्वाचीन (नवीन) तिलकधारी महानुभाव दूसरी प्राचीन (सिंहासनयुक्त) तिलक जो शास्त्रीय शास्त्रानुमोदित है जिसे भगवान भी स्वीकार किये, उसमें अशास्त्रीयत्व तथा आधुनिकत्व की सिद्धि करते हैं । किञ्च ये श्री सम्प्रदाय के नामधारी लोग अष्टाक्षर, मन्त्रद्वय और चरम मंत्र के उपदेष्टा और गृहीता अपने वर्णानुसार कर्म धर्मादि में प्रवृत्त हैं तो यदि उक्त अष्टाक्षरादि से भिन्न मन्त्रों के उपदेष्टा और गृहीता वर्णाश्रम से बिरक्त सन्त महात्मा हैं तो इन तथाकथित श्री सम्प्रदायानुयायियों की सदसद्विवेचनी बुद्धि के अनुसार श्री सम्प्रदायान्तर्गत नहीं है।

मूल:—तथापि जातिर्विद्या महत्वं च रूप यौवनमेव च। वर्जनीया: प्रयत्नेन पंचैते भक्ति कटका: ॥१॥ इत्युक्तेर्जात्याद्याभिमानस्य भक्ति बाधक त्वेन वैष्णवत्व बाधकत्वं ज्ञात्वा आशठकोपस्वामिन: श्री रामानुजाचार्य पर्यन्तानाँ प्राचीना नामाचार्य्याणां तुरीय वर्णावर्त्तीर्णं कांचीपूर्णादि वैष्णवोच्छिष्ट भोजनाभिलाषिणां मत च बुध्वा तथा श्री रामानुजादर्वाचीन स्तदीया: स्वसंप्रदायिनां भागवत धर्म निष्ठत्वेन तत्पार्षदत्व ब्राह्मण नां क्षत्रियादि कुल जातानां स्पृष्ट जलमपि न पिबन्ति अन्याम्प्रति इमे श्री वैष्णवा भगवत्पार्षदा इत्येवं वदन्ति । तान्वं चयितुमिति श्रुत्वा दृष्टवा च जात्याभिमानस्य भगवत्प्रिय भक्तेषु नीचत्व दृष्टि हेतुत्वं तेन भगवद्वैमुख्य कारणत्वं च निश्चित्य तन्निदान भूतं स्ववर्णाश्रम कर्मानुष्ठानं परित्यज्य ॥

रा०प्र०व्या०—फिर भी भक्ति मार्ग के पाच कटक रूप जो हैं यथा—जाति, विद्या, प्रतिष्ठा, रूप और यौवन इन्हें प्रयास करके छोड़ना ही चाहिए जैसा कि मैं अमुक जाति वाला हूँ विद्वान हूँ मेरी बड़ी प्रतिष्ठा है इत्यादि अभिमान भक्ति मार्ग के साधक में आने पर पतन अवश्यम्भावी है। अत: जात्याभिमान को भक्ति और वैष्णवत्व का विनाशक मानकर ही श्री शठकोप स्वामी से आरम्भ करके श्री रामानुजाचार्य पर्यन्त समस्त प्राचीन आचार्य चतुर्थ वर्णोत्पन्न कांची पूर्णादि वैष्णवों के उच्छिष्ट (शीतप्रसादी) प्राप्ति में उत्कण्ठित हुए अर्थात् शीत (शिष्ट अवशिष्ठ) प्रसाद पाये। इन सभी प्राचीनाचार्यों के मत को समझते हुए भी इनसे सम्बन्धित जो श्री रामानुज के पश्चात हुए और हैं ये लोग उन शठकोप कांचीपूर्ण प्रभृति में भागवत् धर्म निष्ठत्व तथा भगवद् पार्षदत्व सिद्ध करते हैं दूसरों से कहते हैं कि ये "कांची पूर्णादि श्री वैष्णव तो भगवान के पार्षद हैं इसलिए उनका उच्छिष्ट जो ग्रहण किया गया उचित ही है किन्तु श्रेष्ठ ब्राह्मण और क्षत्रियादि कुल में उत्पन्न मानव के हाथ से छुआ जल भी नहीं पीते हैं यदि कोई कांची

पूर्णादि की उच्छिष्ट सम्बन्धी चर्चा करे तो उन्हें भागवत पार्षद कह-कर आपत्तिकर्ता की प्रबंचना करते हैं तथा चतुर्थादि वर्णोत्पन्न प्राणी यदि वैष्णवत्व ग्रहण कर लें तो भी उसके द्वारा देखा गया जलादि नहीं ग्रहण करते हैं। इस प्रकार जात्याभिमान को प्रभु के परम प्रेमी भक्तों में नीचत्व भावना "यह नीच जाति का है" का उत्पादक और भावना से विमुखता में कारण निश्चय करके जात्याभिमान मात्र कारण है जिसमें ऐसे स्ववर्णाश्रम में विहित कर्मों के विषय में प्रभु के श्री मुख के वचन हैं।

मूलः—अनन्य गतयो मर्त्यभोगीवोपि परंतप। ज्ञान बैराग्य रहिता ब्रह्मचर्यादिवर्जिता सर्ब धर्मोदित। विष्णोर्नाम मात्रैक जल्पकाः सुखेन यागतिं यांति न ताँ सर्वेऽपि धार्मिकः ॥२॥ इत्येवमादि वाक्यो-क्तार्थमाश्रित्य च बिष्णोरेकैक नामेव सर्ब वेदाधिकं मतम्। तादृक् नाम सहस्रैस्तु राम नाम सम मतम् ॥३। जपतः सर्ब वेदाँश्च सर्ब-मंत्राश्च पार्वति। तस्मात्कोटिगुणं पुण्यं नाम नाम्नैव लभ्यते ॥४॥ षडक्षरं दशरथेस्तारकं ब्रह्म गद्यते। नाम्नां विष्णोः सहस्त्राणां तुल्य एष महामनुः ॥५॥ अनंता भगवन्मन्त्रा नान्येन समा कृताः। श्रिरोरमण सामर्थ्यात्सौंदर्य गुण सागरात् ॥६॥ इममेव परं मंत्र ब्रह्मरुद्रादि देवताः। ऋषयश्चमहा मानो यध्वामुक्ता भवांबुधः ॥७॥ अद्यापि रुद्रः काश्यां तु सर्बेषां व्यक्त देहिनाम्। दिशंत्येव महामंत्र तारकं ब्रह्मनासकम् ॥८॥ तस्य श्रवण मात्रेण सर्ब एव दिवंगताः। इत्येवं स्मृतिभ्यः ॥ अत्रहि जतोः प्राणेषूत्क्रम माणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्मव्याचष्टे येनासामृती भूत्वा मोक्षी भवति य एतत्तारकं ब्रह्मणो नित्यमधीते, सपाप्मानं तरति, समृत्युं तरति, सम्पूर्ण हत्यां तरति, सब्रह्म हत्यां तरति, सबीर हत्यां तरति, स सर्व हत्यां तरति, स संसारं तरति, ससर्वं तरति, सोविमुक्तात्मा श्रितो भवति, समहान् भवति सोऽमृतत्वं च गच्छति ॥

र०प्र०व्या०—जो मेरे अनन्य भक्त हैं वे कैसे भी हों चाहे ज्ञान वैराग्य युक्त हों अथवा रहित हो। ब्रह्मचर्यादि से रहित हों और क्या सभी धर्मों से रहित हो तथापि विष्णु के नाम का रटन करने वाले अनायास ही जिस गति को प्राप्त होते हैं। हे अर्जुन उसे सभी धार्मिक: नहीं प्राप्त कर सकते। इन वाक्यों के अर्थ के अनुसार ही सभी वेदों में विष्णु भगवान का नाम सर्वश्रेष्ठ है। अर्थात् वेद पाठ से भी अधिक फलप्रद है ऐसे विष्णु के नाम हजारों बार उच्चरित हों तो एक राम नाम के होंगे तथा पार्वती, सभी वेदों और सभी मंत्रों के जप से जो फल होता है तदपेक्षया करोड़ों गुना फल एक बार श्री रामनामोच्चारण से होता है। दाशरथि राम का षडक्षर मन्त्र (तारक ब्रह्म) नाम से प्रसिद्ध है यह विष्णु के सहस्र नामों के समान है हे उमा यह मंत्र भगवान के अन्य अनन्तों मंत्रों से श्रेष्ठ है अर्थात् इसके सदृश अन्य मंत्र है ही नहीं, क्योंकि श्री जी को रमण कराना और सौन्दर्य गुणाधिक्य प्रभु श्री राम के समान अन्य रूपों में नहीं है (नाम नामी में अभेद है) इसी मंत्र को जपकर ऋषि महात्मा ब्रह्मा शिवादि संसार रूपी सागर को पार किये हैं। और आज भी शिव जी काशी में इसी मंत्र (तारक ब्रह्म) का उपदेश सभी प्राणियों को देते हैं जिसके श्रवण मात्र से वे लोग मुक्त हो जाते हैं। इत्यादि स्मृति बचनों से तथा अत्रहि इत्यादि "प्राण वायु के निकलने के समय प्राणियों को शिव जी (तारक ब्रह्म) का उपदेश करते हैं जिससे प्राणी अमृतत्व को प्राप्त करता है मुक्त हो जाता है जो इस (तारक ब्रह्म) का नित्य प्रति जप करता है वह सभी पापों से छूट जाता है, मृत्यु सागर को पार कर लेता है वह भ्रूण हत्या, ब्राह्मण हत्या, वीर हत्या, और क्या सभी हत्याओं से छूट जाता है वह संसार से तर जाता है ब्रह्मादि लोगों से भी मुक्त हो जाता है वह महान होकर विमुक्तात्माओं के आश्रित हो जाता है, उसे अमृतत्व प्राप्त हो जाता है।

मूल:—इत्येवमादिभ्यश्च श्रीराम नाम्नः षडक्षर तारकस्य च भगवन्नामांतरेभ्य स्तन्मंत्रांतरेभ्यश्च कोटि गुणाधिक्येन तत्कोटि गुणाधिक फल प्रदत्वं ज्ञात्वाऽनायासेना ब्राह्मणाद्वर्ण बाह्य प्रयंतानांमुक्ति प्रदत्वं च निश्चित्य श्रीरामानन्दाचार्याः सकल पांवर प्राण्युद्धरणाय जगतीतलावतीर्णा काशी सकल जीव विमुक्त्यर्थं रुद्रेणो (रुद्रावतार रूपेण हनुमतेन) पदिष्टं गर्भ जन्म जरा मरणादिभ्यस्तारकत्वात्तारकाढ्यं षडक्षमुपदिष्टवंतो विशुद्धं भागवत्द्धर्मं च स्वशिष्टान्प्रति षडक्षरोपासनानु कूलां तद्वाच्य श्री जानकीरामोपासनाँ च तदनुकूल यत्किचिदन्य दस्ति तदप्युपदिष्ट वंतः एतेषा श्री रामानन्द द्वारा प्रवृत्तिरिति दृष्टया "धुनिकत्वं शास्त्रोक्त दृष्टया सनातन त्वं च-यथोपपद्यते।" श्री सम्प्रदायि नस्तु अष्टाक्षरस्य द्वाख्यस्य चरम वाक्य चेति रहस्य त्रयस्यैव स्वपरंपरा प्राप्तत्वमत एव स्वस्वसम्प्रदायि त्वं मन्यन्तेन मंत्रांतरस्य तेषामाचार्येण श्री राममंत्रार्थ व्याख्याने श्री जानकी रुद्र (हनुमत) अगस्त्य परंपरया इन्यं ब्रह्म तारकमवनी तले प्रकाशयामास। श्री रामः इत्येवं षडक्षरस्य जानक्यादि परंपरा प्राप्तरुत्वतेत्वात्, अन्यथा लक्ष्मी विष्वक्सेन शठकोप परंपरया इमं तारकमवनी तले प्रकाशयामासेयेव मुक्तिः स्यात्, अतएव षडक्षर मंत्र वंतमपि श्री रामानन्द सम्प्रदायिनं स्वसम्प्रदाय वहिर्भूतं मत्वेदानीं तना श्री वैष्णवाचार्यास्ततं प्रति पुनरष्टाक्षरादिकमुपदिशंति स्वसम्प्रदायि त्वोपपत्तये। अन्यथा गुरु लब्ध षडक्षरं प्रति पुनरष्टाक्षरोपदेशानुपपत्तो ॥

र०प्र०व्या०:—श्रुतियों द्वारा राम नाम और षडक्षर तारक ब्रह्म को भगवान् के अन्य नामों एवं मंत्रों की अपेक्षा कोटि गुण वाला और कोटि फल गुणा फल देने वाला किञ्च ब्राह्मणो से लेकर बाह्य वर्णोद्भूत प्राणियों के लिए भी मुक्तिदायक निश्चय करके ही श्री स्वामी रामानन्दाचार्य जी पृथिवी तल पर प्राणियों के उद्धार हेतु अवतीर्ण

हुए और सभी को मंत्र प्रदान किये। तथा काशी में समस्त जीवों के मुक्ति हेतु जो गर्भ जन्म जरण मरणादि भय से तारने वाला तारक ब्रह्म शिवजी से अभीष्ट है यही मंत्र (तारकस्य) स्वामी श्री रामानन्दाचार्य जी से उपदिष्ट हुआ और आचार्यवर्य्य विशुद्ध भागवत धर्म का तथा षडक्षरोपासना के अनुकूल मंत्र प्रतिपाद्य श्री सीताराम जी की उपासना को और तदनुकूल जो कुछ है सभी का उपदेश किये, अपने शिष्यों को। इस प्रकार इनसे परिबर्धित इस परम्परा में आधुनिकता प्रतीत होते हुए भी सनातनत्व है शास्त्र दृष्ठि से क्योंकि परम्परा में आद्याचार्य श्री राम जी है यथा—सीतानाथ समारम्भ मित्यादि श्री सम्प्रदायान्तर्गत तथाकथित लोग अष्टाक्षर द्वयाख्य और चरम मंत्र इन तीनों रहस्यों के प्राप्ता को श्री सम्प्रदायि मानते हैं न कि अन्य श्रीराम के षडक्षर आदि के गृहीता को। तथा उनके आचार्य के द्वारा श्रीराम मंत्र के अर्थ (व्याख्या) में जानकी, रुद्र, हनुमान, अगस्त्यादि के द्वारा यह तारक ब्रह्म पृथिवी पर प्रकाशित हुआ। यह लिखा गया है अत: वे भी स्वीकार किये कि षडक्षर की परम्परा हमारी परम्परा से भिन्न है अन्यथा यह मंत्र लक्ष्मी विष्वक्सेनादि द्वारा पृथिवी पर प्रकाशित हुआ लिखना चाहिए था। अत: षडक्षर मंत्र ग्रहण किये हुए जो श्री रामानन्दाचार्यानुयायी है उन्हें अपने सम्प्रदाय से बाहर मानकर, श्री स्वामी हरिदास जी महाराज के जीवनकाल का संकेत है। इस समय वैष्णवाचार्य पद बोध्य शिष्य लोलुप लोग अष्टाक्षर का उपदेश दे रहे हैं कि ये श्री सम्प्रदायी हो जावें अन्यथा (नहीं तो) गुरु से जिसे षडक्षर राम मंत्र मिल गया उसके प्रति अष्टाक्षर के उपदेश की क्या आवश्यकता।

मूल:—तथापि विष्णोर्नाम्नां सहस्राणां तुल्य एषामहामनु:। अनंता: भगवन्मंता: नानेन तु समाकृता: ॥१॥ जपत: सर्वं मंत्राश्च

पार्वति । तस्मात्कोटि गुणं पुण्यं राम नाम्नैव लभ्यते ।।२।। रुद्रस्तारकं व्याचष्टे येनासावष्टती भूत्वा मोक्षी भवति इत्येवमादि श्रुति स्मृतिभ्यो नारायणाष्टाक्षरादि सर्व मंत्र मंत्र जप लब्ध फलात्कोटि गुणाधिक फलदं षडक्षरं त्याजयित्वा तं प्रति पुनरष्टाक्षराद्युपदेषु दुर्गतिर्दुर्वारा:। उक्तंहि तथैव सुंदरीतत्रे राम मन्त्रं समादाययोऽन्य मंत्र समीहते । ग्रहीता-चैव दाता च ह्युभौ (तौ) नरक गामिनौ इत्यादि यद्युप्यत्क्तरीत्या: षडक्षरादि रहितं न श्री सम्प्रदायित्वं मन्यन्ते तदीया: ।

र०प्र०व्या०:—फिर भी 'विष्णो:' नाम सहस्त्राणाँ तुल्य एष महामनु: । अनन्ताभगवन्मन्त्रा नानेव तु समाकृता: । जपत: सर्व बेदाँश्च सर्व मंत्राश्च पार्वति तस्मात्कोटि गुणं पुण्यं राम नाम्नैव लभ्यते । रुद्रस्तारकं ब्रह्मव्याचष्टे ।। इत्यादि स्मृतियों और श्रुतियों द्वारा श्री नारायण भगवान के अष्टाक्षर और अन्य सभी मंत्रों के जप से प्राप्त फल की अपेक्षा कोटिगुणा अधिक फल देने वाले षडक्षर (तारक मंत्र) राम मंत्र को त्याग कराके अष्टाक्षर के उपदेष्टा और गृहीता दोनों की दुर्गति अवश्य होगी कोई भी नहीं रोक सकता क्योंकि सुन्दरी तंत्र में कहा गया है कि श्रीराम मंत्र लेकर जो अन्य मंत्र ग्रहण करता है वह गृहीता और अन्य मंत्र प्रदाता दोनों नरकगामी होते हैं और ये आचारी पद बोध्य अष्टाक्षर रहित को श्री सम्प्रदायी नहीं मानते हैं।

मूल:—स्तथापि श्री जानकी सम्प्रदायित्वं षडक्षर वत: केन वार्यते, यतो जानकी रुद्र (पवनात्मज) परंपरा वत: कथांचित्प्राप्येमं मंत्रं स्वशिष्यान्प्रत्युपदिष्ट वत: श्री रामानन्दादय इत्येवगम्यते उपपद्यते च तथैव अन्यथा श्री जानकी परंपरयाऽवनी तल प्राप्तत्वयास्य तत्परंपरा सम्बन्ध बिना प्राप्त्युनुपपत्तो: । अतो श्री जानकी सम्प्रदायित्व स्वीकारे श्री रामानन्दादपि षडक्षर प्रवृत्तो: सनातनत्वमुपपद्यते । श्री जानकी परम्परया तत्प्रवृत्तो: श्री सम्प्रदायित्व स्वीकारे तस्य तस्मात्षडक्षर

प्रवृत्तेराधुनिकत्वं श्री परम्परया तत्प्रवृत्त्यनुक्ते तदेवं यथाऽष्टाक्षरादेः षडक्षरस्य च प्रवृत्तेस्तत्द्वारा प्रवृत्ति दृष्टयाऽऽधुनिकं शास्त्र दृष्टया तु सनातनत्वम् ॥

र०प्र०व्या — फिर भी श्री जानकी जी सम्प्रदायित्व षडक्षर प्राप्ति को कौन रोक सकता है क्योंकि श्री जानकी रुद्र (हनुमानजी) की परम्परा से प्राप्त करके इस मन्त्र को श्री रामानन्दाचार्यादि ने अपने शिष्यों को प्रदान किया ऐसा सिद्ध ही है । नहीं तो श्री जानकी जी की परम्परा से प्राप्त यह मंत्र मध्य में श्री रामानन्दादि के सम्बन्ध के बिना आज तक कैसे प्राप्त होता रहता है इसलिए श्री जानकी जी सम्प्रदायित्व स्वीकार करने पर भी श्री रामानन्द जी से जो षडक्षर का प्रचारादि हुआ उसमें सनातनत्व सुरक्षित ही रहा । यदि षडक्षर गृहीता को श्री सम्प्रदायी माना जाय तो श्री रामानन्दाचार्य जी से षडक्षर परम्परा आधुनिक हो जायेगी क्योंकि श्री सम्प्रदाय में षडक्षर की परम्परा नहीं है जैसे अष्टाक्षर की परम्परा जिस प्रकार षडक्षर की प्रवृत्ति जो श्री रामानन्दादि के द्वारा हुई वह देखने में आधुनिक होने पर भी शास्त्र दृष्टि से सनातन है ।

मूलः—तथा श्रीरामानन्द, श्रीरामप्रसाद, श्री रामचरणदासादि द्वारा धनुर्बाण देरचंद्रिकामुद्रिकादेः सबिंदु तिलकस्य च प्रवृत्ते स्तत्तद्वारा प्रवृत्ति दृष्टयाऽऽधुनिकत्वं शास्त्रोक्त दृष्टया तु सनातनत्वमंतव्यम् अन्यथा चक्रादि धारणस्य तदन्यतर तिलकादि धारणस्य चाधुनिकत्वेन धनुर्बाणादि सबिंदु तिलक धारणस्य तुल्य त्वात् । एषां दृष्टां तेन तेषामपि संप्रदायित्व नोपपद्यते । उभयत्रतत्र प्रवृत्याधुनिकत्वस्य शास्त्रोक्तरीत्या तत्तत्सनातनत्वस्य च समानत्वात् ।

र०प्र०व्या०—उसी प्रकार श्री रामानन्दाचार्यादि तथा श्री रामप्रसाद जी एवं श्री रामचरण दासादि के द्वारा धनुर्बाणादि सबिंदु

तिलकादि की परम्परा आधुनिक प्रतीत होने पर भी शास्त्र दृष्टि से सनातन ही माननी चाहिए। सनातनत्व न मानने पर जैसे धनुर्बाणादि की प्रवृत्ति परम्परा दिखाई देती है ठीक उसी प्रकार चक्रादि धारण की भी परम्परा है अतः चक्रादि धारण में भी आधुनिकत्व सिद्ध होने लगेगा। अतः चक्रादि धारण करने वाले भी श्री सम्प्रदायी नहीं हो सकते। इसलिए चक्रादि धारण तथा धनुर्बाणादि धारण दोनों में आधुनिकत्व तथा शास्त्र दृष्टया सनातनत्व समान ही है।

मूलः—तदेवं एतेत्तुष्यतुदुर्जनः इति न्यायेनोक्तम्। वस्तुतस्तु न बिंद्वादि धारणस्याधुनिकमुपपद्यते, श्री जानक्या श्री रामप्रसादाय कृपया दत्तत्वात्। श्री जानक्या सनातनत्वेन तद्धत बिंद्वादेरपि सनातनत्वो-पपन्त्यातल्लब्धबिंद्वादि धारणस्य सनातनत्वोपपत्तेः। श्री जानकी लब्ध बिंद्वादि धारणवतां तत्परंपरया प्राप्त षडक्षर वर्ती च श्री जानकी सम्प्रदायित्वोपपत्तेश्च।

र० प्र० व्या०—ऊपर जो कुछ समाधान धनुर्बाणादि धारण के विषय में दिया गया है वह तो (तुष्यतु दुर्जनन्यायेन) (दुर्जन जैसे सन्तुष्ट हो वैसा करें) दिया गया। वास्तविकता तो यह है कि धनु-र्बाण तथा बिंदु विशिष्ट तिलक में आधुनिकता किसी भी प्रकार नहीं सिद्ध हो सकती। सो कैसे। सुनिये यह बिंदु तो श्री रामप्रसादाचार्य जी को श्री जानकी जी ने कृपा करके दिया। अतः श्री जानकी जी के सनातन होने के कारण उनसे धारण किया गया, बिन्दु भी सनातन है ऐसे सनातन बिन्दु का धारण करना भी सनातन ही सिद्ध हुआ। अतः श्री जानकी जी के द्वारा प्रदत्त बिंदु धारण करने वाले षडक्षर जपपरायण श्री जानकी सम्प्रदायी सिद्ध हुए।

मूलः—किञ्च "देवोभूत्वादेवं यजेत्" इत्येवमाद्युक्तेः योयस्योपासक स्तेन तस्य तद्धतं चिह्न धार्यं नान्यदेवधृतं यथा शैवाः शिवधृत भस्म-

रुद्राक्षादिकमेवधारयंतिनविष्णु नारायणधृत चक्रादिकं यथा। बैष्णवाः विष्णुधृत चक्रादिकमेवधारयंति न शिव धृतं भस्मारुद्राक्षादिक तथा श्री रामोपासकानामपि श्री जानकी राम धृत तच्चिह्नं बिंद्वादिकं धनुर्बाणादिकं चावश्य धार्यम् । नान्यधृतं भस्मादिकं न तद्पांतर धृत चक्रादि च ।।

र०प्र०व्या०:—और भी (देवोभूत्वा) इत्यादि उक्तियों से जो जिसका उपासक हो उसे अपने इष्टदेव के द्वारा धृत चिह्नादि ही धारण करना चाहिए न कि अन्य देवों से धृत चिह्नादि जैसे शैव शिवधृत भस्म रुद्रादि ही धारण करते हैं न कि विष्णु नारायणादि धृत चक्रादि। किञ्च बैष्णव विष्णु धृत चक्रादि ही धारण करते हैं। न कि शिवधृत भस्म रुद्रादि। ठीक इसी प्रकार श्री रामोपासकों को भी श्री जानकी जी और श्रीराम जी के द्वारा धृत बिंदु धनुर्वाणादि अवश्य धारण करना चाहिए। न कि अन्यों से धारण किया गया भस्मादि अथवा चक्रादि ।।

मूल:—न च रामो विष्णु नारायणावतारत्वेन पठितः पुराणेष्वतः सोऽप्यते विष्णु नारायण रूपो भबिष्यत्यतस्तद्भक्ता अपि विष्णु नारायण भक्ता एवातोऽद्य प्रभृति तेषामपि चक्रादि धारणमुचितमिति व्याच्यम् विष्णु नारायणादीनामपि "ब्रह्मणोरूपकल्पना" द्विचत्वारि षडष्टाशां, दश द्वादश, षोडष। अष्टादशामी कथिता हस्ता शंखादिभिर्युताः। सहस्त्रांतास्तदा तासां वर्ण वाहन कल्पना। इति रामतापिनीयोपनिषद– महार्णं वेशयानोप्सु मां त्वं पूर्बमजीजनः रक्षां विधास्यन्भूतानां विष्णुत्वमुपजग्मवाने ।।१।। इति बाल्मीकीये च रामाख्य ब्रह्मावतारत्व श्रवणात् तथैव स्मरणाच्चत्वदुरक्तरी त्या विष्णु नारायणादयोऽप्यंते स्वावतारिरामरूप अभविष्यन्ति अतो विष्णु नारायणादि भक्तानामपि श्रीराम भक्तत्वात्तेमप्य द्यप्रभृति धनुर्वाणादि धारणमुचितमितवक्तव्यात् ।

र०प्र०व्या०: — यहां बिष्णु नारायणादि के उपासक पूर्वपक्ष करते हैं कि पुराणों में श्रीराम जी विष्णु तथा नारायण के अवतार रूप से कहे गये हैं अतः अन्त में वे भी बिष्णु आदि स्वरूप ही हो जायेंगे अतएव श्रीराम जी के भक्त श्री विष्णु नारायण के ही भक्त सिद्ध हुए, इसलिए श्री रामोपासकों को धनुष बाण की जगह शंख चक्र ही धारण करना चाहिए। ऐसे पूर्व पक्ष के उपस्थित होने पर आचार्य प्रवर उत्तर पक्ष के रूप में कहते हैं—हे अल्पज्ञ ! तू ऐसा प्रश्न श्रुतियों से अनभिज्ञ होने के कारण करता है क्योंकि श्री रामतापिनीउपनिषद् में ब्रह्मणो रूप कल्पना द्विचत्वारिषडष्ट दशद्वादशषोडषस्य दशामी कथिता हस्ता शंख्यादिभियु ताः सहस्त्रान्तास्थातामां वर्ण वाहन कल्पना। ये मंत्र तथा बाल्मीकीय रामायण के महार्णव शयनोऽप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः। रक्षां बिधास्यन्भूतानां बिष्णु त्वमुपजाभिवान्। इत्यादि वचनों से बिष्णु नारायणादि अन्य अष्ट भुजा वाले महाविष्णवादि भी परब्रह्म श्री राम के अवतार कहे गये उन्हीं का बाल्मीकि के द्वारा यत्र तत्र अनुबाद अपनी ऋतम्भरा प्रज्ञा से किया गया। अतः रे पूर्व पक्षी ! तुम्हारे आग्रह के अनुसार विष्णु नारायणादि ही श्री राम जी के अवतार सिद्ध हुए और अन्त में ये देवता अपने अवतारी श्री राम में विलीन हो जायेंगे, अर्थात् अन्त में श्री राम रूप ही होंगे अतः इन देवों के उपासक श्री राम जी के ही उपासक सिद्ध हुए, अतः ये विष्णवादि के उपासक ही शंख चक्र के स्थान पर धनुर्बाणादि धारण करें इसी इसी में औचित्य है।

मूलः—नहि-ईदृशो विवादो बैष्णबमतानुकूलोऽस्य शंकर मत साधक त्वेन बैष्णव मत बाधकत्वात् तत्कुतः एवं सर्बेषां भगवदवताराणां जन्य त्वेन घटादिवद्विनाशि त्वानुमाने सर्ब बेदान्त वेद्य स्वकारण ब्रह्मरूपतयाऽवस्थानत्वोपपन्त्यंति एकस्यैवा द्वितनस्य ब्रह्मणोऽवशेषत्वा-

पत्तौः तस्मादीदृशं बिवादं परित्यज्य मुमुक्षुभिः स्वेष्ट देव प्रादो कामैः शास्त्रान्तराविरुद्ध स्वाधिकारानु रूप स्वोपासना नानुकूलशास्त्रोक्तरीत्या वर्तितव्यम् ।।

र० प्र० व्या०—रे पूर्व पक्षी-तेरे पाण्डित्याभिमान को बोध कराने के लिए ऐसा उत्तर किया गया कि तुझ जैसा पुनः श्रीराम भक्तों के सम्मुख ऐसे पूर्व पक्ष लेकर उपस्थित होने का संकल्प ही न करें।

वास्तव में तुम्हारा यह पूर्व पक्ष बैष्णव मत के अनुकूल नहीं है ऐसा पूर्व पक्ष तो शंकर मत की सिद्धि करता है कैसे ? अजी सुनिये ! आपके कथनानुसार सभी भगवदवतार उत्पत्ति शील हुए और अन्त में श्री नारायण रूप में मिल जाने के कारण अनित्य हो गये क्योंकि जैसे घटपटादि पदार्थ मृतकादि से उत्पन्न होकर अन्त में मृत्तिका रूप हो जाते हैं अतः सभी लोग घटादि को अनित्य बिनासी मानते हैं उसी प्रकार आपने पाण्डित्य प्रदर्शनार्थ पूर्बपक्ष खड़ा करके श्री बैष्णवों के सिद्धान्तों के विपरीत मार्ग का अनुसरण किया जो स्वयं आपको अभिप्रेत नहीं है। अतः जब सभी भगवदवतार जन्य होंगे तो अन्त में अपने कारण भूत बेदान्त वेद्य अद्वितीय परब्रह्म स्वरूपापन्न हो जायेंगे। अतः ऐसे अनिष्टापादक विवाद में मत पड़। इसलिए ऐसे विवादों को त्याग कर मुमुक्ष शास्त्र से अविरुद्ध अपने स्वरूपानुरूप स्वेष्ट देव प्राप्ति के लिए अपनी उपासनानुकूल व्यवहार करे जो शास्त्र सम्मत हो।

मूलः—तदेवमुक्तरीत्या स्वशरीरस्य स्वेष्टदेव मंत्राक्षरादि न्यासेन तदायुधादि धारणेन च तत्सादृश्य निष्पादनेन एतसमीय गमन तत्पूजानयोग्यतां निष्पाद्य तद्यजनादिकं कुर्यात् । स्वलिंग शरीरं तु उक्तरीत्योक्त बीजेन ध्यानेन भस्मीकृत्योक्त बीजै रात्पाव्यपिण्डी कृत्य च स्वेष्ट देव सदृशं निष्पाद्य च तत्र स्वेष्ट देव वस्त्रभूषणादिस्त्रगादि धारणेन मनसा कर्पूरागरूक स्तूर्यादि दिव्यगंधानुलेप नेन च तस्य

स्वप्राप्य स्वेष्ट देव समीप गमन तत्कैंकर्य विशेष करण योग्यतानिर्विभान्य तं च स्वात्मानं स्वहृदि पुरुष प्रार्थना पूर्वकं तत्कृपया तत्सार्द्ध सुषुम्नया शरीराद्वहि निः सार्च्यार्चिरादिमार्गेण साकेताख्यं परं पदं प्रापयित्वा तत्र चापरिमितस्तंभादि विशिष्टे माणिक्य मण्डपे कल्पतरू मूलेऽष्ट दलादि पद्ममध्य रत्नसिंहासनेऽष्ट दल कर्णिकायां विराजमानौ श्री जानकी राम चन्द्रौ ध्यानेन दर्शन सभानाकारौ कृत्वा प्रणम्य च पुनरष्टदलेषुस्थिता चारुशीलादीन्ध्यानेन साक्षात्कृत्य तत्पादौ प्रणम्य च तदाज्ञया यथा कालं भगवदभीष्टं तत्कैंकर्य कुर्यात् ।

र०प्र०व्या०:—पूर्व में जो सादृश्य निष्पादनार्थ कहा गया था उसके अनुसार अपने इष्टदेव के मन्त्राक्षरों का न्यास करें तथा उनके आयुधादि धारण करे इस प्रकार उनकी पूजा विषयिक योग्यता सम्पादन करने के पश्चात् ही उनका पूजनादि करे। और अपने सूक्ष्म शरीर का शोधन पूर्वोक्तरीति से करके मानसिक ही अपने इष्टदेव के बस्त्राभूषण माला आदि धारण करे तथा कर्पूर कस्तूर्यादि दिब्य गन्धों का लेपन करके स्वेष्ट के सदृश होकर कैंकर्य विशेष करने की योग्यता सम्पादित कर अपने को अपने हृदय में स्थित पुरुष की प्रार्थना करने के पश्चात् उसकी कृपा से उसके साथ सुषुम्ना के द्वारा शरीर से बाहर निकाल कर अर्चिरादि मार्गों से साकेत रूप परमपद को प्राप्त करावों जहां पर अपरमित स्तम्भादि से विशिष्ट माणिक्य मण्डप में कल्पतरू के मूल है अष्टदल वाले कमल के मध्य रत्नसिंहासन पर अष्ट दल की कर्णिकाओ के ऊपर विराजमान श्री रामचन्द्र जी और श्री विदेहनन्दिनी जू के ध्यान और दर्शन से सदृश स्वरूप वाले युगल को प्रमाण करे पुनः अष्टदल पर स्थित चारुशीलादि का ध्यान द्वारा साक्षात्कार करके प्रणाम पूर्बक उनकी आज्ञा से यथा भगवान के अभीष्ट कैंकर्या को करें।

मूलः—एव मुक्तरीत्या प्रतिदिनं सुषुम्नानिर्गत्यार्चिरादिमार्गेण परंपदं गत्वोक्तरीत्या प्रेमपूर्वकं स्वामि कैंकर्यंकुर्बतस्तत्कृपा दृष्टिमवलोकयतस्तस्तत्प्राप्ति कामस्य श्री जानकी रामैकशरस्य तदेकमनस्यकस्य च "यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यंते कलेवरम्" तं तमैवेति कौंतेय सदा तद्भावभावितः । इत्येवमादि बचनेभ्योऽतकालेऽपि तादृशस्मृत्य विस्मृत्या-त्तदाभगवत्कृपा दृष्टयावलोकितः सनहृदि पुरुष कृपया तत्सार्द्धं सुषुम्नया शरीराद्वहिर्निगत्यार्चिरादि मार्गेण स्तन्मार्गस्थ तत्तल्लोक स्वामिभिरग्निमारम्य चतुर्मुखपर्यन्तैः पूजितोऽमानव पुरुषैराध्यतो बिरजायां स्नरत्वास्नात्र तत्र दिब्य मगल विग्रह सत् परंपदाख्यं तद्धामं गत्वा सीतारामौ प्राप्यतत्पादौ प्रणमन् ताभ्यां क्रोडीकृत्य सन्मानितस्तदा-ज्ञय ...भिष्टं तत्कैंकर्य कुर्वन् ताभ्यां सार्द्धं विहरन् सदातत्रैवमोदते, नतस्मात्स्थानात्पुनरा वर्त्तते । नसपुनरा वर्तते न स पुनरा वर्तते इति श्रुतेः अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिश्शब्दा इति सूत्राच्च ॥

इति श्री रामप्रसादानुयायिना श्री हनुमद्यास शिष्येण । श्री मद्धरिदासाख्येन कृतं नित्य कृत्य बोधकं प्रबंध ॥

र०प्र०व्या०:—इस प्रकार उक्तरीति से प्रतिदिन जो सुषुम्ना से अर्चिरादि मार्गों द्वारा साकेत लोक में पहुंच कर प्रेमपूर्वक अपने प्रभु (श्रीसीतारामजी) की सेवा करे ऐसे भक्त उनकी कृपा दृष्टि का अव-लोकन करते हुए उनके प्राप्ति की इच्छा वाले प्रभु के एक शरण्य एक मनस्क (एक ही लक्ष्य मन में रखने वाले) यं यं वापि स्मरन्भावो इत्यादि वचनानुसार अन्त काल में यदि कफपित्तादिवशात् स्मृति न भी रहे तो भी भगवान् की कृपा दृष्टि से अनुगृहीत होते हुए हृदि-स्थित पुरुष की कृपा से उसके साथ सुषुम्ना द्वारा शरीर से बाहर जाकर अर्चिरादि मार्गों से तत्तन्मार्ग में स्थित तत्तल्लोकों के स्वामी अग्नि से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त सभी से पूजित होकर अमानवों से सम्मानित